ओ३म्

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

दिसम्बर २०१७ Date of Printing = 05-12-17
प्रकाशन दिनांक= 05-12-17

वर्ष ४७ : अङ्क २
दयानन्दाब्द : १९३
विक्रम-संवत् : मार्गशीर्ष-पौष, २०७४
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,११८

संस्थापक : **स्व० ला० दीपचन्द आर्य**
प्रकाशक व
सम्पादक : धर्मपाल आर्य
सह सम्पादक : ओम प्रकाश शास्त्री
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)

४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११६१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

एक प्रति ५.०० रु०
वार्षिक शुल्क ५०) रुपये
आजीवन सदस्यता ५००) रुपये
विदेश में २०००) रुपये

इस अंक में

- ❑ शास्त्रार्थ २
- ❑ वेदोपदेश ३
- ❑ मन और फ्रौयड् ५
- ❑ महान् व्यक्तित्व के धनी स्वामी श्रद्धानन्द ७
- ❑ आर्यों का संघर्ष १०
- ❑ ईश्वर का अद्भुत कौशल १४
- ❑ मांस भक्षण, भारतीयता..... १६
- ❑ कर्म फल रहस्य १९

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण **३००० रुपये सैकड़ा**
स्पेशल (सजिल्द) **५००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।**

शास्त्रार्थ

विषय : क्या मूर्तिपूजा वेदानुकूल है?
प्रधान : पं० श्री बुद्धदेव जी मीरपुरी
दिनांक : ११ दिसम्बर सन् १९४० ई०
शास्थार्थ कर्ता : श्री ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केसरी वर्तमान महात्मा अमर स्वामी जी महाराज
पौराणिकों की ओर से : पौराणिक पं० श्रीकृष्ण शास्त्री

आर्यसमाज में जब शास्त्रार्थों का युग था, तब गैर आर्यसमाजी लोग आर्यसमाज में आते व बड़े चाव से हमारी बात सुनते थे। इसी बात को ध्यान में रखकर हमारे विद्वानों के शास्त्रार्थों में से एक शास्त्रार्थ का प्रसंग यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

–सम्पादक

नोट :- इस शास्त्रार्थ में पौराणिक पं० श्री कृष्ण जी के सहायक पं० बाबा चमनलाल जी भजनोपदेशक थे एवं श्री पं० अमरसिंह जी के साथ पं० मनसाराम जी वैदिक तोप थे।

श्री ठाकुर अमरसिंह जी शास्त्रार्थ केसरी -

ओ३म् शन्नो मित्रः शं वरुणः, शन्नो भवत्वर्य्यमा।
शन्नऽइन्द्रो बृहस्पतिः, शन्नो विष्णुरुरुक्रमः।।

ओ३म् नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि।

त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि ऋतं वदिष्यामि।।
सत्यं वदिष्यामि, तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु।
अवतु मामवतु वक्तारम्।।

धर्म के श्रद्धालु सज्जनो !

आज हम यह निर्णय करने के लिए इकट्ठे हुए हैं कि - परमेश्वर की मूर्ति बनाकर पूजना, वेदों, शास्त्रों और तर्कों से सिद्ध होता है वा नहीं। मैं प्रारम्भ में कुछ प्रश्न इस विषय में रखता हूँ और आशा करता हूँ कि मेरे विद्वान मित्र वेदों के प्रमाणों द्वारा मेरे प्रश्नों के उत्तर देने का कष्ट सहन करेंगे।

१. प्रथम प्रश्न मेरा यह है कि- वेद के किस-किस मन्त्र में परमेश्वर की मूर्ति बनाने की आज्ञा है? बताइये?

२. दूसरा प्रश्न यह है कि - चारों वेदों में से कोई मन्त्र ऐसा बताइये अथवा दिखाइये? जिसमें परमेश्वर की मूर्ति को बनाने और पूजने की आज्ञा हो?

३. वेदमन्त्रों द्वारा बताइये कि - ईश्वर की मूर्ति-सोना-चाँदी, पीतल, पत्थर, मिट्टी, लकड़ी आदि किस चीज की बनानी चाहिये?

४. ईश्वर की मूर्ति- कितनी लम्बी, कितनी चौड़ी एवं कितनी भारी बनाई जाये? और उसकी आकृति कैसी हो? उसका रंग लाल-पीला-हरा आदि कैसा हो? ऐसा वेद के किन-किन मन्त्रों में बताया गया है?

५. आजकल मन्दिरों में जिन मूर्तियों की पूजा की जाती है, उनमें से परमेश्वर की मूर्ति कौन सी है? चार मुख-एक मुख दो भुजा अथवा चार भुजा या आठ भुजाओं वाली या रुण्ड-मुण्ड गोल मटोल या अन्य कोई? वेदमन्त्रों द्वारा परमेश्वर की मूर्ति की पहचान बताइये? इनमें से कौन सी वेदानुकूल एवं कौन सी वेदविरुद्ध है?

६. जितनी भी मूर्तियाँ यत्र-तत्र देखी जाती हैं, वह सब ही मनुष्यों तथा पशुओं आदि की हैं। राम-कृष्ण आदि मनुष्यों, वृषभ, शूकर आदि पशुओं और

शेष पृष्ठ २६ पर

ओ३म्

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। महर्षि दयानन्द

परमेष्ठी प्रजापतिः ऋषिः। **सविता = ईश्वरः देवता।** भुरिगजगती। निषादः स्वरः।।

पुनः स कीदृश इत्युपदिश्यते।।

वह यज्ञ कैसा है, यह फिर उपदेश किया है।।

ओ३म् वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्।
देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।।३।।

पदार्थ **(वसोः)** वसुर्यज्ञः **(पवित्रम्)** शुद्धिकारकं कर्म **(असि)** अस्ति। **अत्र सर्वत्र पुरुषव्यत्ययः (शतधारम्)** शतं = बहुविधमसंख्यातं विश्वं धरतीति तम्। **शतमिति बहुनामसु पठितम्। निघं० ३।१।। (वसोः)** वसुर्यज्ञः **(पवित्रम्)** शुद्धिनिमित्तम् **(असि)** अस्ति **(सहस्रधारम्)** बहुविधं ब्रह्माण्डं धरतीति तं यज्ञम्। **सहस्रमिति बहुनामसु पठितम्।। निघं० ।३।१।। (देवः)** स्वयंप्रकाशस्वरूपः परमेश्वरः **(त्वा)** तं यज्ञम् **(सविता)** सर्वेषां वसूनामग्निपृथिव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां प्रसविता। **सविता वै देवानां प्रसविता।। श० १।१।२।१७।। (पुनातु)** पवित्रीकरोतु **(वसोः)** पूर्वोक्तो यज्ञः **(पवित्रेण)** पवित्रनिमित्तेन वेद-विज्ञानकर्मणा **(शतधारेण)** बहुविद्याधारकेण परमेश्वरेण वेदेन वा **(सुप्वा)** सुष्ठुतया पुनाति पवित्रहेतुर्वा तेन **(काम्)** कां कां वाचं **(अधुक्षः)** दोग्धुमिच्छसीति प्रश्नः। **अत्र लडर्थे लुङ्।। अयं मंत्रः श० १।७।१।१४-१७ व्याख्यातः।।३।।**

प्रमाणार्थ **(शतम्)** 'शत' शब्द निघं० (३। १) में बहुनामों में पढ़ा गया है। **(सहस्रम्)** 'सहस्र' शब्द का निघं० (३ / १) में बहुनामों में पाठ किया गया है। **(सविता)** शत० (१ । १ । २ । १७) में 'सविता' का अर्थ 'देवों का उत्पन्न करने वाला' किया है। **(अधुक्षः)** यहाँ लट् अर्थ में लुङ् लकार है। इस मन्त्र की व्याख्या शत० (१ । ७ ।१ । १४-१७) में की है। १ । ३ ।।

सपदार्थान्वयः **यो वसोः = वसुर्यज्ञः शतधारं पवित्रमसि =शतधा शुद्धिकारकोऽस्ति** (शत-धारम्=बहुविधमसंख्यातं विश्वं धरतीति तं पवित्रम्=शुद्धिकारकं कर्म), **सहस्रधारं पवित्रमसि=सुखदोऽस्ति** (सहस्रधारम्=बहुविधं ब्रह्माण्डं धरतीति तं यज्ञं, पवित्रम्=शुद्धिनिमित्तम्), **त्वा=तं, तं** यज्ञं **सविता** सर्वेषां वसूनामग्निपृथिव्यादीनां त्रयस्त्रिंशतो देवानां प्रसविता **देवः** स्वयंप्रकाशस्वरूप परमेश्वरः **पुनातु** पवित्रीकरोतु।

हे जगदीश्वर! भवान् तेनास्माभिरनुष्ठितेन पवित्रे पवित्रनिमित्तेन वेदविज्ञानकर्मणा **शतधारेण** बहुविद्याधारकेण परमेश्वरेण वेदेन वा **सुप्वा=यज्ञेन** सुष्ठुतया पुनाति पवित्रहेतुर्वा तेन **अस्मान् पुनातु** पवित्रीकरोतु।

हे विद्वन्, जिज्ञासो वा! त्वं कां कां कां (वाचं) **वाचमधुक्षः=प्रपूरयसि, वा प्रपूरयितुमिच्छसि** दोग्धुमिच्छसीति प्रश्नः।।१।३।।

भाषार्थ : जो **(वसोः)** यज्ञ **(शतधारम्)** शतधा **(पवित्रम्)** शुद्धिकारक **(असि)** है अर्थात् बहुविध असंख्य विश्वों को धारण करने वाला, शुद्धिकारक कर्म है, **(सहस्रधारम्)** बहुविध ब्रह्माण्ड को धारण करने

शेष पृष्ठ ६ पर

मन और फ्रौयड्

(उत्तरा नेरूरकर, बंगलौर, मो०:- ०९८८४५०५८३१०)

अबके मास क्रम से बारी तो बृहदारण्यकोपनिषद् के विषय की है, परन्तु यह उपनिषद् मैंने अभी पूरी तरह पढ़ा नहीं है, स्वाध्याय चल रहा है। इसलिए इसके विषय में मैं अभी कुछ लिखना नहीं चाहती हूँ। पूर्णतया पढ़ लेने पर अवश्य ही इस विषय पर भी लिखूँगी। अबकी बार पुरातन और नवीन सोच में सामंजस्य बैठाने का प्रयत्न करते हैं। विषय है- मन का स्वरूप और मानसिक वृत्तियाँ। मैं इन विषयों पर पाश्चात्य मतों से कुछ परिचित हूँ और योगदर्शन पढ़ते हुए मैंने पाया कि वहाँ इस विषय पर जो गहन विश्लेषण किया गया है, वह पाश्चात्य मत से सम्मत नहीं लग रहा है। ये दोनों क्या किसी प्रकार से मिलाए जा सकते हैं, या किसी मत में कुछ कमी है, इस विचार से मैंने सम्प्रति मानस-विद्या (psychology) का स्वाध्याय किया। कुछ निष्कर्षों पर जो मैं पहुँची, वे इस लेख में प्रस्तुत कर रही हूँ।

प्राचीन भारतीय परम्परा के अनुसार मस्तिष्क की क्रियाओं को चार भागों में बाँटा जाता है। वे इस प्रकार हैं-

१) मन- संकल्प-विकल्प करने वाला अर्थात् बुद्धि से सन्देश ग्रहण कर उसको शरीर में क्रियान्वित करना अथवा इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान को बुद्धि तक पहुँचाना।

२) बुद्धि- निश्चय करने वाला अर्थात् मन से प्राप्त ज्ञान क्या है, उसे स्मृति के आधार पर निश्चित करना; और उसके अनुसार क्या चेष्टा करनी चाहिए, यह सन्देश मन को भेजना।

३) चित्त- स्मरण करने वाला अर्थात् अनुभवों को स्मृति में सुरक्षित करने वाला और आवश्यकता पड़ने पर उनको स्मृति से बाहर निकालने वाला- स्मरण कराने वाला।

४) अहंकार- अभिमान करने वाला अर्थात् आत्मा का यह सोचना कि प्रकृति का यह शरीररूपी अंश मैं हूँ। इनको किसी भी मानसिक क्रिया के विभिन्न भागों के रूप में समझा जा सकता है। जैसे- मोटरगाड़ी को चलाने में स्टार्टर, मोटर, पैट्रोल, आदि की भूमिका को पृथक्-पृथक् समझना।

दूसरी ओर, इन सब भागों को एक मानकर यदि हम वृत्तियों को देखें, जैसे कार का आगे-पीछे-गोल जाना, तो योगदर्शन बताता है कि वे पाँच प्रकार की हैं-

१) **प्रमाण-** अर्थात् इन्द्रियों से **प्रत्यक्ष** देखना, सुनना, आदि; तर्क से **अनुमान** लगाना; और भाषा-द्वारा ज्ञानार्जन करना (आगम)- **प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।। १/७।।**

२) विपर्यय- जो जैसा है, उसे वैसा न समझना, अर्थात् मिथ्याज्ञान-**विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ।। १/८।।** इसका मुख्य कारण है- शरीर से आत्मीयता का होना या अहंकार। इसके कारण आत्मा शरीर की इच्छाओं, सुख-दुःख आदि को अपना मानकर व्यवहार करता है- शरीर को सुन्दर आभूषण पहनाता है, बच्चों को अपना मानकर प्रेम करता है, आदि।

३) विकल्प- जो केवल शब्दों पर आधारित हो, परन्तु जिसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध न हो- **शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।। १/९।।** अर्थात् काल्पनिक कहानियाँ और उपलक्षण से- चित्र, चलचित्र, आदि आदि।

४) निद्रा- जिसमें इन्द्रियों से प्राप्त होने वाले ज्ञान का अभाव हो- **अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा।। १/१०।।** इसमें स्वप्न और सुषुप्ति, दोनों का समावेश है। इसलिए स्वप्न में होने वाले ज्ञान, अर्थात् मानसिक ज्ञान का अभाव नहीं होता।

५) स्मृति- जिसमें पूर्व अनुभवों को याद किया जाए या याद रखा जाए- **अनुभूतविषयासम्प्रमोषः**

स्मृतिः।। १/११।। रटने आदि की प्रक्रिया भी यहाँ सम्मिलित है।

मुण्डकोपनिषद् आदि में मन की अन्य रूप से चार अवस्थाएं बताई गई हैं- जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति और समाधिजन्य तुरीय अवस्था। सो, उपर्युक्त में प्रमाण, विपर्यय, विकल्प व स्मृति जागृत अवस्था के प्रभेद हैं, जबकि स्वप्न और सुषुप्ति निद्रा के अन्तर्गत आते हैं। आधुनिक विज्ञान में, निद्रा के भेद-रूपी स्वप्न और सुषुप्ति १९५२ में ही आविष्कृत हुए हैं और इनको क्रमशः REM और Non-REM Sleep कहा जाता है। तुरीय अवस्था में वस्तुतः मन समाधिस्थ होकर शान्त और वृत्तिहीन होता है। यह meditative state भी आधुनिक विज्ञान आजकल धीरे-धीरे मान रहा है।

पाश्चात्य मानसिक विज्ञान का प्रणेता औस्ट्रिया के सिग्मण्ड फ्रौयड् को माना जाता है। फ्रौयड् ने मन को तीन प्रकार से विभाजित किया-

१) इड्- यह एक ऐसा भाग है, जो हमारे ज्ञान से छिपा हुआ है। यह इच्छा करता है और वह इच्छा तभी-कि-तभी पूरी करने की चेष्टा करता है। यह कष्ट से दूर भागता है। कष्टों के निवारण के लिए यह अन्यों पर क्रूरता भी कर सकता है। यह भाग जन्म से हममें होता है, इसलिए शिशु अपनी इच्छा के होते ही उसकी पूर्ति चाहते हैं, नहीं तो रोते हैं।

२) ईगो- यह वह भाग है, जो बच्चा-स्वरूप इड् को वश में रखने के लिए, आयु के साथ धीरे-धीरे सृजित होता है। जब माता-पिता सिखाते हैं - "नहीं, थोड़ी देर रुको, तभी खाना मिलेगा", तब बच्चे को समझ में आता है कि उसको इच्छा को रोकना है। तथापि वह इड् की इच्छा की पूर्ति के लिए ही कार्य करता है, केवल सही प्रकार और समय को ढूँढता है।

३) सुपरईगो- माता-पिता व हमारे अन्य गुरु हमको अच्छे-बुरे का विवेक कराते हैं। ये पाप और पुण्य का ज्ञान सुपरईगो में बस जाता है। यही 'अन्तरात्मा की आवाज़' होती है। साथ ही साथ, समाज में जीने के लिए कौन-कौन से नियन्त्रण आवश्यक हैं, यह भी सुपरईगो के अन्तर्गत हैं, जैसे कि नम्रता से व्यवहार करना जबकि हमें क्रोध आ रहा हो, सिनेमा में जोर से न बोलना जबकि हमारी चिल्लाने की इच्छा हो रही हो, आदि, आदि। जहाँ ईगो इच्छापूर्ति के लिए केवल एक सुरक्षित अवसर/प्रकार ढूँढता है, वहाँ सुपरईगो मन को बुरी दिशा में जाने से रोकता है। वह इच्छा और उससे सम्बद्ध क्रूरता अथवा अन्य असामाजिक व्यवहार को मिटाने का प्रयास करता है।

दूसरी ओर, फ्रौयड् ने मानसिक वृत्तियों को तीन भागों में बाँटा-

१) कौंशस्- जागृतावस्था की वे वृत्तियाँ जो अभी हमारे मस्तिष्क में हैं और जिनका हमें ज्ञान है या जिनपर हमारा नियन्त्रण है। जैसे- अभी हम यह लेख पढ़ रहे हैं और आँखों को हम शब्दों के अनुसार चला रहे हैं- यह सब हमारे संज्ञान में है।

२) सब्-कौंशस्/प्रीकौंशस्- मस्तिष्क का वह भाग जो स्मृति में है और कभी भी कौंशस् मन में लाया जा सकता है। जैसे- लेख पढ़ते-पढ़ते हमें कुछ बचपन की बात स्मृत हो जाती है, जिसका कि स्मृति में होना हमें ज्ञात नहीं था और जिसके विषय में हम तब तक नहीं सोच रहे थे।

३) अन्-कौंशस्- मन का वह भाग, जिसका ज्ञान हमको सीधा-सीधा उपलब्ध नहीं है और जिसमें हमारी स्वाभाविक पाशविक इच्छाएं दबी हुई हैं, और वे इच्छाएं भी जिनको हमने स्वयं दबाया है, अर्थात् इड्। दबी होने पर भी, ये हमारे आचरण और स्वास्थ्य आदि पर विचित्र प्रकार से प्रभाव डालती हैं। कुछ विशेष प्रकारों से इन इच्छाओं को उजागर किया जा सकता है। जैसे- हम किसी भी मिलन में सबसे सुन्दर लगना चाहते हों और यह बात हमें स्वयं प्रत्यक्षतया ज्ञात न हो, परन्तु किसी उत्सव पर यदि कोई हमसे अधिक अच्छा लग रहा हो, तो हम बिना जाने-समझे ही उससे दुर्व्यवहार करने लगेंगे।

ये तीन-तीन विभाग एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं। सो, कौंशस् ईगो और सुपरईगो से नियन्त्रित रहता है और सब्कौंशस् से भी स्मृतियाँ निकाल सकता है। और भी, वह अनजान और विचित्र प्रकारों से अन्कौंशस् से प्रभावित होता है। सब्कौंशस् भाग कौंशस् भाग, ईगो और सुपरईगो

से जुड़ा होता है। अन्कौंशस् भाग बहुत गहरी पैठ जमाए होता है और प्रधानतया ईड् से जुड़ा होता है और उसके अनुसार कौंशस् को बदल सकता है।

अब हम प्राचीन भारतीय और नवीन पाश्चात्य मान्यताओं का मिलाप करते हैं।

कुछ बातें तो अत्यन्त स्पष्ट हैं-

* **कौंशस्** अवस्था जागृत अवस्था के समानान्तर ही है।

* **प्रीकौंशस्** अवस्था स्मृति के बराबर है, जिसमें हमारे सारे अनुभव और ज्ञान सुरक्षित होते हैं।

* **अन्कौंशस्** अवस्था वास्तव में बुद्धि में स्थित अविद्या-जनित विकार है, जो कि बुद्धि को प्रेरित करते हैं, जिससे कि हमारा स्वभाव विशेष-अन्यों से भिन्न हो जाता है (इनके विषय में आगे भी कहेंगे)।

इड्, ईगो और सुपरईगो का सामंजस्य थोड़ा कठिन है।

इड् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश जो पञ्च क्लेश योगदर्शन में दिए गए हैं का ही नाम प्रतीत होता है। जिस प्रकार अविद्या के कारण राग, द्वेष और अभिनिवेश इच्छाएं उत्पन्न होती हैं, उसी प्रकार इड् भी इच्छाएं उत्पन्न करता है। ये सभी शारीरिक इच्छाएं होती हैं और अस्मिता के कारण जीवात्मा इनको अपनी इच्छाएं मानता है।

ईगो को अनेक बार अहंकार कहा जाता है, परन्तु फ्रौयड् ने ईगो की परिभाषा कुछ और की है। हमारी विभाजन-पद्धति में यह बुद्धि के अन्तर्गत आएगा, जो इच्छापूर्ति के सही अवसर का निश्चय करेगी और तब तक इच्छाओं पर अंकुश लगा कर रखेगी।

सुपरईगो संस्कार के अन्तर्गत आएंगे, जो कि बुद्धि में ही स्थान पाते हैं। यह इन्द्रिय-दमन रूपी शम् और मन के अंकुश-रूपी दम का कार्य करेगा।

वस्तुतः, **ईगो** और **सुपरईगो** भारतीय पद्धति में अलग से नहीं निर्धारित है। बुद्धि का एक कार्य मानते हुए, यह भी मानना पड़ेगा कि उनका एक पाद अवश्य ही चित्त, अर्थात् स्मृति में भी होगा। बुद्धि उस भाग में स्थित पूर्वानुभव अथवा अच्छे-बुरे के विवेक के आधार पर वर्तमान व्यवहार को सुनिश्चित करेगी। मन उस व्यवहार को क्रियान्वित करेगा।

इस प्रकार अन्तःकरण के चारों विभागों का फ्रौयड् की संकल्पना में कुछ-कुछ समावेश हो जाता है। मस्तिष्क की अवस्थाएं फ्रौयड् ने जो बताई हैं, उनमें प्रीकौंशस् और अन्कौंशस् वास्तव में अवस्थाएं न होकर मन के ही विभाग प्रतीत होते हैं। इसी कारण से उसके बताए छः अंग एक-दूसरे से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं। भारतीय संकल्पना इसके विपरीत अधिक वैज्ञानिक प्रतीत होती है। उसमें दिए मन के विभाग अपने-अपने कार्यों में भेद के अनुसार हैं, और मन की अवस्थाएं सम्मिलित रूप से प्रत्ययों के ज्ञान करने के प्रकार हैं। तथापि फ्रौयड् का उद्देश्य व्यक्तित्व को समझने का अधिक था और मन की कार्य-प्रणाली समझना कम। इसके विभाजन को इसी परिप्रेक्ष में देखना होगा। भारतीय विभाजन कार्य-प्रणाली को समझने के उद्देश्य से है, इसलिए उसमें भेद भिन्न हैं। व्यक्तित्व के भेद क्लेशों के अन्तर्गत माने गए हैं।

सम्पूर्णतया देखें तो **मस्तिष्क** इतनी क्लिष्ट वस्तु है, जिसके कि सभी अंग-प्रत्यंग एक-दूसरे से इतने जुड़े हुए हैं, कि उसका विभाजन करना अत्यन्त कठिन है। पाश्चात्य विज्ञान में अभी भी मन को समझने में मतैक्य नहीं है। फ्रौयड् को छोड़, अन्य भी मत प्रचलित हैं जो कि उसके मत से पर्याप्त भिन्न हैं। मैंने इस लेख में केवल इस एक ही मत का विश्लेषण किया है, क्योंकि इस मत में कौंशस् (=जागृत) अवस्था के साथ-साथ प्रीकौंशस् और अन्कौंशस् अवस्थाएं भी कही गई हैं, जो कि अधिकतर मानसिक वैज्ञानिक किसी न किसी रूप में आज मानते हैं और जो हमारे शास्त्रों में नहीं मानी गई हैं। क्या ये विशेष अवस्थाएं हमें भी माननी चाहिए, इसको जानने के विचार से ही मैंने उपर्युक्त विश्लेषण किया है। मेरे अनुसार इनको मानसिक अवस्थाएं मानना सही नहीं है और भारतीय दृष्टिकोण अधिक वैज्ञानिक है।

❑❑

महान् व्यक्तित्व के धनी- स्वामी श्रद्धानन्द
(धर्मपाल आर्य)

स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम आते ही मस्तिष्क में एक ऐसे निर्भीक और तेजस्वी संन्यासी का चित्र बनने लगता है, जो पराधीन भारत की विषम परिस्थितियों में भी एकछत्र राज्य करने वाले अंग्रेजों की संगीनों के सामने अपना सीना तानकर खड़े हो जाते हैं। सन् १८५६ ईस्वी, फाल्गुन महीने की कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को जालन्धर जिले के तलवन ग्राम में जन्मे बचपन के बृहस्पति मुन्शीराम बने; मुन्शीराम से महात्मा मुन्शीराम और फिर स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से विश्वविख्यात हुए व हम सबके आदर्श बने। बृहस्पति से स्वामी श्रद्धानन्द तक का मुन्शीराम का जो इतिहास है, वह किसी ऐतिहासिक चमत्कार से कम नहीं है। जब मुन्शीराम ने महात्मा मुन्शीराम के रूप में सार्वजनिक जीवन में पदार्पण किया, तो न केवल शुद्धि आन्दोलन को नई ऊर्जा मिली, अपितु धार्मिक क्षेत्र में, शिक्षा के क्षेत्र में, राजनीति के क्षेत्र में, वेद प्रचार-प्रसार के कार्यक्षेत्र में, स्वतन्त्रता-आन्दोलन में और राष्ट्रनिर्माण के महायज्ञ में एक दौर का सूत्रपात हुआ। यदि युवा मुन्शीराम के जीवन के उस भाग को (जो महर्षि दयानन्द सरस्वती के सान्निध्य से रहित था) छोड़कर शेष जीवन का अध्ययन करें, तो उसमें हमें त्याग के, तपस्या के, आध्यात्मिकता के, देशभक्ति के, सफल पत्रकारिता के और सफल नेतृत्व के गुण उनके (स्वामी श्रद्धानन्द जी) व्यक्तित्व को गरिमा प्रदान करते हैं। महात्मा मुन्शीराम की महर्षि दयानन्द सरस्वती के प्रति अगाध श्रद्धा थी, जिसे उन्होंने स्वरचित ''कल्याण मार्ग का पथिक'' नामक पुस्तक में कुछ इस प्रकार व्यक्त किया- ''ऋषिवर तुम्हें भौतिक शरीर त्यागे ४६ वर्ष हो चुके, परन्तु तुम्हारी मूर्ति मेरे हृदय पथ पर अब तक ज्यों की त्यों अंकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते-गिरते तुम्हारे स्मरणमात्र ने मेरी आत्मिक रक्षा की है। भगवन्! मैं तुम्हारा ऋणी हूँ; इस ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ इसलिए जिस परमपिता की असीम गोद में तुम परमानन्द का अनुभव कर रहे हो; उसी से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे तुम्हारा सच्चा शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करें।'' कहते हैं जादू वह होता है, जो सिर चढ़कर बोले। आप (श्रद्धानन्द जी) के जीवन में ऋषिवर के सान्निध्य ने उपरोक्त कथन को पूर्णतः चरितार्थ किया। आइए, उन्हीं के शब्दों में उन पर पड़े ऋषिवर के सान्निध्य के अमिट प्रभाव का अवलोकन करते हैं। आप (श्रद्धानन्द जी) लिखते हैं कि मैंने बड़े-बड़े वक्ताओं के व्याख्यान सुने हैं; परन्तु जो ओज महर्षि की वाणी में था, वह अन्य कहीं नहीं पाया। उनके भाषण से श्रोताओं को जो प्रकाश मिलता है, वैसा प्रकाश किसी अन्य वक्ता की वाणी से नहीं मिला। ऋषिवर से प्रेरणा तो पं0 गुरुदत्त, पं0 अमीचन्द व पं0 लेखराम जैसे असंख्यों महापुरुषों ने ली लेकिन आप सर्वमेध यज्ञ के होता बने। आप प्रत्येक कार्य क्षेत्र में अग्रसर थे। आपने जिस ओर भी अपना ध्यान दिया, उसे सफलता के शिखर पर पहुँचाया। आप मार्ग में आने वाली कठिनाईयों का जिस सहजता से, धीरता से सफलतापूर्वक सामना करते थे, उससे आपके विशाल व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मिलती है। स्वामी श्रद्धानन्द जी रूढ़ियों के अति विरोधी थे। साधारण पुरुषों की तरह वे लकीर के फकीर न थे, बल्कि हर एक कार्य में वह नये मार्ग के पथिक और प्रदर्शक थे। स्वामी जी का जातिवाद में लेशमात्र भी विश्वास नहीं था। स्वयं खत्री होते हुए मुन्शीराम जी ने अपने पुत्र-पुत्रियों के विवाह जाति-पाति के बन्धन से मुक्त होकर किए थे। अपनी दूसरी पुत्री अमृतकला का विवाह डॉ0 सुखदेव के साथ किया था, जो जाति से अरोड़ा थे। खत्री बिरादरी द्वारा महत्मा मुन्शीराम के इस कार्य का उग्र विरोध किया गया और उनको जाति से बहिष्कृत करने की धमकी भी दी गई। पर महात्मा जी अपने मन्तव्य पर अटल रहे। इसके अतिरिक्त अपने दोनों पुत्रों हरिश्चन्द्र और इन्द्र का विवाह भी उन्होंने भिन्न जातियों में किया। हरिश्चन्द्र जी की पत्नी अरोड़ा थी, जबकि इन्द्र जी की पत्नी ब्राह्मण थी। ऐसे महापुरुषों के विषय में भर्तृहरि ने ठीक ही लिखा है-

''मनस्वीकार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम्''

अर्थात् मनस्वी और धुन के धनी अपने कार्य में आने वाले सुख और दुःख की गणना नहीं करते हैं। इस प्रकार के असंख्यों उदाहरण दिए जा सकते हैं, जो स्वामी जी की दृढ़ता, निडरता, निष्छलता और सच्ची ईश्वरभक्ति की गवाही देते हैं। प्राचीन गुरुकुल शिक्षा-प्रणाली को पुनर्जीवित करने के लिए गुरुकुल की स्थापना हेतु महात्मा मुन्शीराम ने अपने सहयोगियों के साथ सन् १८६६ में आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया और गुरुकुल हेतु धन एकत्रित करने का कार्य भी स्वामी जी ने अपने ऊपर लेते हुए अगस्त १८६८ के सद्धर्म प्रचारक में यह घोषणा की- ''वे जब तक गुरुकुल के लिए ३० हजार रुपया एकत्रित नहीं कर लेंगे, तब तक घर में पैर नहीं रखेंगे।'' अपनी इस भीष्मप्रतिज्ञा के साथ २६ अगस्त, १८६६ को गुरुकुल के लिए धन एकत्रित करने हेतु निकल पड़े। उपरोक्त प्रसंग १७वीं सदी के अन्तिम दिनों का है, जब किसी सार्वजनिक कार्य के लिए ३० हजार रुपये की राशि एकत्र करना अत्यन्त कठिन ही नहीं, अपितु सर्वथा असम्भव सा ही समझा जाता था। लेकिन नीतिकार ने ठीक ही लिखा है-

''विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमाना।
प्रारब्धमुत्तमजनाः न परित्यजन्ति''।।

अर्थात् उत्तम कोटि के मनुष्य विघ्नों के बार बार बाधित करने पर भी अपने प्रारम्भ किए कार्य की लक्ष्य प्राप्ति से पूर्व नहीं छोड़ते। मुन्शीराम जी उपरोक्त कथन को चरितार्थ करते हुए अपने अटल विश्वास हार्दिक धर्म प्रेम, अदम्य उत्साह और अनुपम कार्यक्षमता के बल पर ३० हजार रुपये जैसी बड़ी राशि को एकत्रित करने के असम्भव कार्य को सम्भव कर दिखाया और 8 अप्रैल, १६०० को जब वे वापिस आए, तो लगभग ४० हजार रुपया इकट्ठा कर चुके थे। इसके बाद गुरुकुल की स्थापना का कार्य गम्भीरता से प्रारम्भ हुआ, जिसकी परिणति २ मार्च, १६०२ को गुरुकुल कांगड़ी की स्थापना के रूप में हुई। इसके बाद तो गुरुकुल स्थापना की मानो बाढ़ सी आ गई। ३ फरवरी सन्, १६०८ को मुलतान में गुरुकुल की स्थापना, अप्रैल १६१२ को गुरुकुल कुरुक्षेत्र की स्थापना, सन् १६१३ में गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ की स्थापना, सन् १६१५ में पंजाब प्रान्त के लुधियाना जिले में गुरुकुल रायकोट की स्थापना और १८ फरवरी १६२४ को गुरुकुल सूपा की स्थापना की। १३ फरवरी,१६२३ ई0 को आगरा में भारतीय हिन्दू महासभा की स्थापना। १६०६ ई0 में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना की तथा उसके प्रथम प्रधान निर्वाचित हुए। स्वामी जी ने अपने कार्य का माध्यम लेखन को भी बनाया, जिसके लिए उन्होंने सन् १६४६ को वैशाखी के दिन सद्धर्म प्रचारक पत्रिका का शुभारम्भ किया, उसमें स्त्रियों के समान अधिकार और शिक्षा के लिए समान अवसर और साधन पैदा करने के लिए जनजागरण का अभियान प्रारम्भ हुआ। इसके अतिरिक्त इसमें आर्यसमाज के सामयिक प्रसंगों पर विचारपूर्ण लेखों, विचारोत्तेजक सम्पादकीय लेखों आदि का प्रचार-प्रसार होता रहा। ये स्वामी श्रद्धानन्द जी के कृतित्व की एक हलकी सी झलक मात्र थी। उनके सम्पूर्ण कृतित्व को व्यक्त करने के लिए अति पुरुषार्थ साध्य है। स्वामी जी का कृतित्व जितना विशाल था, उनका व्यक्तित्व उससे भी अधिक विशाल था। १२ अप्रैल, १६१७ को मायापुर वाटिका (कनखल) में महात्मा मुन्शीराम ने संन्यास की दीक्षाग्रहण की और स्वामी श्रद्धानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए। स्वामी जी का संन्यास आश्रम में प्रवेश करने का मतलब था सार्वजनिक जीवन में और परोपकार के मार्ग में समग्रता के साथ प्रवेश और पारिवारिक जीवन से समग्र विरक्ति। इस कसौटी पर स्वामी जी पूर्णतः खरे उतरे। स्वामी जी का यह मानना था - ''यदि जाति को स्वतन्त्र देखना चाहते हो, तो स्वयं सदाचार की मूर्ति बनकर अपनी सन्तान के सदाचार की बुनियाद रख दो। जब सदाचारी ब्रह्मचारी हों, शिक्षक हों और कौमी हो शिक्षा पद्धति, तब ही कौम की जरूरतों को पूरा करने वाले नौजवान निकलेंगे; नहीं तो इसी तरह आपकी सन्तान विदेशी विचारों और विदेशी सभ्यता की गुलाम बनी रहेगी। स्वामी जी का चिन्तन राष्ट्रवादी था, स्वामी जी का हर कार्य राष्ट्रहित पर आधारित था, स्वामी जी का व्यक्तित्व प्राणिमात्र का हितचिन्तक था। स्वामी जी का व्यक्तित्व निडरता और निश्छलता की मूर्ति था, जिसकी झलक हमें असगरी बेगम के प्रकरण में देखने को मिलती है। असगरी बेगम एक मुसलमान हेड कांस्टेबल की पत्नी थी, जो कि असगरी बेगम पर अमानवीय अत्याचार करता था, जिससे असगरी बेगम आहत होकर स्वामी जी की शरण में आई। स्वामी जी ने उसे अपनी बेटी के रूप में स्वीकार

किया तथा उसकी इच्छा के अनुसार हिन्दू धर्म में दीक्षित करते हुए गुरुकुलीय आयुर्वेदकालेज के प्राचार्य डॉ0 राधाकृष्ण के भतीजे अयोध्यानाथ के साथ विवाह कर दिया और असगरी बेगम का नाम शान्ति देवी रख दिया। इस घटना से मुसलमानों में फैले विद्वेष की भावना से तथा उनके द्वारा मिलने वाली धमकियों से भी वे लेशमात्र विचलित नहीं हुए। ३० मार्च, १९१९ की वह ऐतिहासिक और साहसिक घटना आज भी हर भारतवासी के हृदय को झकझोर देती है तथा अपूर्व उत्साह का संचार करती है, जिसमें अंग्रेजों द्वारा लाए गए ''रौलेट एक्ट'' नामक कानून के विरुद्ध छिड़े आन्दोलन में स्वामी जी ने चाँदनी चौक पर लगभग ४० हजार प्रदर्शनकारियों का न सिर्फ कुशल नेतृत्व किया, अपितु अंग्रेजों द्वारा पीछे हटने की चेतावनी को दरकिनार करते हुए गोरी सेना को ललकारते हुए कहा- ''साहस हो तो चलाओ गोली सन्यासी का सीना खुला है।'' स्वामी जी आर्थिक- शुचिता के प्रति अत्यन्त सतर्क रहते थे। वे हृदय की सरलता के, विलक्षण सूझबूझ के, निर्भीकता के, और प्रभावशाली व्यक्तित्व के धनी थे। स्वामी जी का महान कृतित्व उनके विराट व्यक्तित्व की देह था तथा उनका विराट व्यक्तित्व उनके महान् कृतित्व की आत्मा थी। जीवन के अन्तिम समय में जब स्वामी जी अस्वस्थ हो गए, तो इन्द्र जी को अपने पास बुलाकर बोले- ''इस शरीर का कुछ ठिकाना नहीं। तुम एक काम जरूर करना। मेरे कमरे में आर्यसमाज के इतिहास की सामग्री रखी है, उसे संभाल लेना और समय निकालकर इतिहास अवश्य लिख डालना।'' जब बन्धु-बान्धवों ने दिलासा देते हुए स्वस्थ होने की बात कही, तो स्वामी जी ने कहा- ''आज लोग तो ऐसा ही कहते हैं। पर मैं अनुभव कर रहा हूँ कि मेरा शरीर सेवा के योग्य नहीं रहा। अब तो एक ही इच्छा है कि दूसरे जन्म में नये देह से इस जीवन का काम पूरा करूँ''। आखिर २३ दिसम्बर, १९२६ के दिन सायंकाल ४ बजे अब्दुल रशीद नामक धर्मान्ध ने स्वामी जी पर प्राणघातक हमला कर दिया, जिससे स्वामी जी इस नश्वर संसार से चले गए। मेरी स्वामी जी को कोटिशः विनम्र श्रद्धांजलि। आओ, हम सब मिलकर उनके सपनों का भारत बनाने के लिए प्रयास और पुरुषार्थ करें।

❑❑

९१वाँ स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस

स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस के उपलक्ष्य में एक विशाल शोभायात्रा २५ दिसम्बर, २०१७ को प्रातः १० बजे बलिदान-भवन, नया बाजार दिल्ली-6 से चलकर दोपहर १ बजे दोपहर रामलीला मैदान में विशाल जनसभा के रूप में परिणत होगी, जिसका समापन सायं ४ बजे होगा।

कृपया अधिकाधिक संख्या में पहुँचकर संगठन का परिचय दें।

पृष्ठ ३ का शेष

वाला, **(पवित्रम्)** सुखदायक एवं शुद्धि का निमित्त **(असि)** है, **(त्वा)** उस यज्ञ को **(सविता)** सब वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी आदि तैंतीस देवों का उत्पादक **(देवः)** स्वयं प्रकाशस्वरूप परमेश्वर **(पुनातु)** पवित्र करे।

हे जगदीश्वर! आप हम लोगों से सेवित **(पवित्रेण)** पवित्रताकारक वेद-विज्ञान-कर्म से **(शतधारेण)** बहुत विद्याओं के धारक परमेश्वर वा वेद से **(सुप्वा)** अच्छी प्रकार पवित्र करने वाले वा पवित्रता के हेतु यज्ञ से हमें **(पुनातु)** पवित्र कीजिये।

हे विद्वान् अथवा जिज्ञासु मनुष्य! तू **(काम्)** कौन-कौन सी वाणी को **(अधुक्षः)** दुहना चाहता है? ।।१।३।।

भावार्थः ये मनुष्याः पूर्वोक्तं यज्ञमनुष्ठाय पवित्रा भवन्ति, तान् जगदीश्वरो बहुविधेन विज्ञानेन सह वर्त्तमानान् कृत्वैतेभ्यो बहुविधं सुखं ददाति। परन्तु-ये क्रियावन्तः परोपकारिणः सन्ति ते सुखमाप्नुवन्ति, नेतरेऽलसाः।

भावार्थः जो मनुष्य पूर्वोक्त यज्ञ का अनुष्ठान करके पवित्र होते हैं, उनको परमेश्वर बहुत प्रकार के विज्ञान से युक्त करके उन्हें अनेक प्रकार का सुख प्रदान करता है। परन्तु- जो कर्मशील परोपकारी हैं, वही सुख को प्राप्त करते हैं; दूसरे आलसी लोग नहीं।

❑❑

आर्यों का संघर्ष व बलिदान (2)

(राजेशार्य आट्टा,मो०:-०९९९१२९९१३१८)

प्रिय पाठकवृन्द! जो हिन्दू समाज (ब्राह्मण) शास्त्रार्थ में हारकर ऋषि दयानन्द को गाली देने, ईंट-पत्थर मारकर अपमानित करने और विष पिलाकर मारने की नीचता कर सकता है, यदि उसे अवसर मिल जाता, तो वह स्वामी श्रद्धानन्द को भी फाँसी दे देता। यह सत्य है कि पं० लेखराम, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल, भक्त फूलसिंह आदि आर्य बलिदानियों की हत्या मुस्लिमों द्वारा की गई थी, हैदराबाद की जेल में सत्याग्रहियों की मृत्यु का कारण मुस्लिम थे। लोहारू में स्वामी स्वतंत्रानन्द जी आदि पर लाठियाँ व कुल्हाड़ियाँ चलाने वाले भी मुस्लिम ही थे, पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पं० चिरंजीवलाल जैसे बेधड़क प्रचारक को विष हिन्दुओं ने ही पिलाया था (१८९३ ई०) पं० तुलसीराम की आँखों में मिर्च झोंक कर उनके पेट में छुरा मारने वाले हत्यारे अहिंसा के प्रचारक जैनी लोग थे (१९०३ ई०)। नेपाल की धरती पर आर्यसमाज की स्थापना करने वाले पं० माधवराव जोशी के परिवार को यातना देने व उनके सुपुत्र पं० शुक्रराज शास्त्री को फाँसी देने वाले हिन्दू ही थे। स्वयं को धार्मिक दिखाकर अधर्म का आचरण करने वाले पौराणिक पण्डित शास्त्रार्थ में आर्यसमाज से हारकर प्रायः गाली- गलौच व मार- पीट पर उतर आते थे। सामने बैठी जनता समझ जाती थी कि सत्य किधर है। उस काल की एक झलक देखते हैं-

काशी शास्त्रार्थ के समय (१८६९ ई०) काशी नरेश ईश्वरी नारायण ने पौराणिकों का पक्ष लेकर अपने हारे हुए पण्डितों को विजयी घोषित किया और ऋषि दयानन्द को ईंट-पत्थर मारने वाले धूर्तों को खुली छूट देकर अध्यक्ष पद की गरिमा घटाई थी। कुछ ऐसा ही १८८८ ई० (श्रावण शुक्ला ५, १९४५ वि०) में बूँदी नरेश ने किया था। नरसिंहगढ़ में पौराणिकों का आर्यसमाज के दो संन्यासियों स्वामी विश्वेश्वरानन्द व स्वामी नित्यानन्द के साथ शास्त्रार्थ हुआ। उसकी अध्यक्षता नरेश ने की थी। बूँदी नरेश रामानुज सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अतः उन्होंने अपनी शासकोचित तटस्थता तथा सम्प्रदाय निरपेक्षता को भुलाकर केवल पौराणिक पण्डितों का ही पक्ष लिया। इतना ही नहीं, अपितु शास्त्रार्थ के तुरन्त पश्चात् दोनों आर्य संन्यासियों को अपने राज्य से भी निर्वासित कर दिया। उस समय के पत्रों में बूँदी नरेश की इस पक्षपात पूर्ण कार्यवाही की कटु आलोचना की गई थी।

यह शास्त्रार्थ इतना महत्वपूर्ण था कि शाहपुरा नरेश नाहरसिंह वर्मा ने इसे छपवाने के लिए पं० गुरुदत्त विद्यार्थी के पास भेजा। मुनिवर गुरुदत्त किसी कारणवश इसे छपवा तो नहीं सके परन्तु उन्होंने अपनी सम्मति प्रदान करते हुए लिखा कि महर्षि के पश्चात् ऐसा महत्वपूर्ण शास्त्रार्थ आर्यसमाज में कहीं नहीं किया है अतः इसे अविलम्ब प्रकाशित किया जाए। संस्कृत में हुए इस शास्त्रार्थ का विषय था- 'ब्राह्मण भाग वेद हैं या नहीं'। १५ अक्टूबर, १८८८ को यह शास्त्रार्थ आर्यसमाज शाहपुरा द्वारा पुस्तक रूप में प्रकाशित हुआ।

(डॉ० भवानीलाल भारतीय, आर्यसमाज के शास्त्रार्थ-महारथी)

पं० रामसहाय शर्मा (स्वामी अभेदानन्द सरस्वती) बाड़मेर (राजस्थान) के बाजार में आर्यसमाज का प्रचार करते थे, जिस पर स्थानीय सनातन धर्मसभा के प्रधान पं० वंशीधर ने आपत्ति की। परन्तु पण्डित जी अपना उपदेश कार्य निर्विघ्न रूप से करते रहे। उसी अवसर पर भारत धर्म महामण्डल के स्वामी हीरानन्द आये।

उन्होंने शर्मा जी को मूर्तिपूजा पर शास्त्रार्थ के लिए आहूत किया। कबूतरों के चौक नामक स्थान पर शास्त्रार्थ होने लगा परन्तु जब सनातनी लोगों को अपनी निर्बलता का भान हुआ, तो उन्होंने शर्मा जी पर जलता हुआ लक्कड़ फेंक कर मारा। सभा भंग हो गई, परन्तु उपस्थित जनता पौराणिक पक्ष की कमजोरी समझ गई (१९२२ ई०)।

सन् १९२४ ई० में जब पं० रामसहाय जी फतहपुर (शेखावाटी) में भगवान् श्रीकृष्ण के निष्कलंक चरित्र का निरूपण कर रहे थे, तो गैण्डाराम नाम का एक ब्राह्मण बिगड़ कर कहने लगा कि श्रीकृष्ण तो स्वयं ब्रह्म थे। उन्हें कोई पाप नहीं लगता। वे स्वयं कहते हैं कि मेरी सोलह हजार पत्नियाँ हैं। आखिर शास्त्रार्थ की बातचीत हुई और दूसरे दिन जब आर्यसमाज मन्दिर में शास्त्रार्थ होने लगा, तो चारभुजा के मन्दिर का पुजारी नंगी तलवार लेकर आर्य विद्वान पर दौड़ा। तुरन्त सभा भंग हो गई। पुजारी आर्य पं० राम सहाय पर ही उसे तलवार से मारने का दोष लगाने लगा। आर्य उपदेशक को पुलिस पकड़ कर ले गई और रात भर हवालात में रखा। दूसरे दिन जब सभी बातों का पता चला, तो उन्हें छोड़ दिया गया।

एक बार भिवानी (हरियाणा) में पं० मनसाराम वैदिक तोप का पौराणिकों से शास्त्रार्थ हुआ। पं० जी के साथ उनके मित्र महाशय हंसराज आर्य भी थे। पौराणिकों ने पण्डित जी को उनका पूरा समय न दिया। पण्डित जी बार-बार शास्त्रार्थ के नियमानुसार अपने समय के पच्चीस मिनट देने के लिए कहते रहे। पौराणिकों ने उत्तर में पण्डित जी पर लाठियों से जानलेवा हमला कर दिया। लाठियों की भीषण वर्षा हुई। मुट्ठी भर आर्यों ने धैर्य, दृढ़ता व साहस से लाठियों के वार सहे। महाशय हंसराज ने पण्डित जी की रक्षा करते हुए स्वयं अपने ऊपर लाठियों के वार सहे। तब जोश में आकर कुछ आर्यवीरों ने पण्डित जी से कहा कि हमें इस दुष्टता का यथायोग्य उत्तर देने दीजिए। पण्डित जी ने कहा- नहीं। मार खाकर भी सत्य के लिए कर्म करो, यही ठीक है।

इस शास्त्रार्थ का ऐसा प्रभाव पड़ा कि भिवानी के पंसारी श्री टेकचन्द जी ने पाषाण- पूजन का परित्याग कर दिया और मूर्तियाँ फैंक कर सच्चे आस्तिक बन गये।

कौल ग्राम (कैथल, हरियाणा) के पौराणिक पं० माधवाचार्य बिना बात ही महर्षि दयानन्द को गालियाँ देते रहते थे। पं० बुद्धदेव मीरपुरी ने उनसे अनेक बार शास्त्रार्थ किये और हर बार उन्हें लज्जित किया। बटाला (गुरदासपुर, पंजाब) में तो माधवाचार्य की पराजय का यह परिणाम निकला कि वहाँ की सनातन धर्म सभा ही टूट गई। मीरपुरी जी माधवाचार्य को ललकारते हुए अफ्रीका के नैरोबी शहर में जा पहुँचे। यहाँ माधवाचार्य के साथ शास्त्रार्थ के प्रसंग में जब मीरपुरी जी ने शिवपुरी की अश्लीलतम गाथा दारुवन की कथा सुनानी प्रारम्भ की, तो सनातनी बौखला उठे। एक पुराणपन्थी युवक छुरा लेकर पण्डित मीरपुरी जी पर प्रहार करने के लिए झपटा। मीरपुरी जी तो बच गये, परन्तु आर्यवीर दल के सेनापति को चोट लग गई। सभा में खलबली मच गई। पौराणिकों को सभाभवन से निकालना पड़ा और माधवाचार्य तो थर-थर काँपते हुए हाथ जोड़कर क्षमा-प्रार्थना करने लगे।

ऋषि दयानन्द और आर्यसमाज को गालियाँ देना ही पं० माधवाचार्य का सनातन धर्म का प्रचार था। उसी पुण्य (?) की कमाई से वह रोटी खा रहा था। रोहतक के दुर्गाभवन में भी कभी उसका यह धर्म-प्रचार चल रहा था। अपनी आदत के अनुसार वह आर्यों को शास्त्रार्थ की चुनौती भी दे देता था। प्रो० उत्तमचन्द शरर जी ने अपने साथियों से कहा- उसकी सभा में चलकर हम उसको शास्त्रार्थ की चुनौती देंगे। आर्यवीर मामचन्द आदि ने कहा- माधवाचार्य बड़ा शरारती है। कुछ अनिष्ट हो सकता है। हमें वहाँ नहीं जाना चाहिए। अलग से सभा करनी चाहिए। इस पर शरर

जी ने कहा- अरे, आप तो बहुत भीरू हो। आप आर्यवीर कैसे? इस पर ये लोग वहाँ गए। माधवाचार्य ने पहले की तरह आर्यों को ललकारा, तो शरर जी ने उठकर उससे कुछ प्रश्न कर दिए। तब माधवाचार्य के उकसाने पर पौराणिक शरर जी को अग्निकुण्ड में फेंकने लगे। तब श्री मामचन्द तथा श्री जितेन्द्र जी आर्य (गुरदासपुर) बड़ी वीरता से पौराणिकों की भीड़ को चीरते हुए और पिटाई सहन करते हुए शरर जी को मौत के मुँह में से निकाल कर लाए थे। (प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु)

पं० माधवराव जोशी ने काशी में (१८७६ ई०) महर्षि दयानन्द से शंका समाधान कर वैदिक धर्म की दीक्षा ली। पोखरा (नेपाल के गाँव का) में किसी वैद्य के घर रद्दी कागजों में पड़ी सत्यार्थप्रकाश उठाकर पढ़ी और वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार शुरु कर दिया। वहीं १८९६ ई० में नेपाल की पहली आर्यसमाज स्थापित की। अपने पिता के देहान्त (१९०५ ई०) पर उनका वैदिक रीति से अंतिम संस्कार किया। उन्होंने नेपाल की प्रथा अनुसार तेरहवीं पर मांसादि की दावत तथा श्राद्ध पर पशुबलि और उसके मांस वितरण से इन्कार कर दिया।

पौराणिक पण्डितों ने राजपुरोहित के यहाँ शिकायत की। धूर्तों ने तत्कालीन सरकार चन्द्रशमशेर राणा की अनुमति से दरबार में शास्त्रार्थ का आयोजन किया। राणा के बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने वाले पंजाबी अध्यापक मा० गुरदयाल जी भी जोशी जी के साथ दरबार में गये। जोशी जी निर्भीकता से शास्त्रार्थ करने लगे। प्रसंगवश उन्होंने पशुपतिनाथ की मूर्ति को पत्थर कहा और उसके भोग व मांस आदि के खाने से इन्कार किया, तो राजपुरोहित प्रयागराज ने रोनी सूरत बनाकर महाराज से कहा- हमारे पशुपतिनाथ महादेव को पत्थर बताने वाले को पीटने की अनुमति दीजिए। राजा के हाँ कहते ही धूर्तों ने दोनों (जोशी जी व मा० गुरदयाल जी) को लात, घूंसों, डण्डों आदि से पीट-पीटकर लहूलुहान कर दिया। पर्वती ब्राह्मणों ने प्रधानमन्त्री को धमकी दी कि जोशी जी को जेल में डाला जाए, अन्यथा वे (ब्राह्मण) नेपाल छोड़कर चले जाएंगे। जोशी जी को २ वर्ष का सश्रम कारावास तथा बाद में नेपाल छोड़ने का दण्ड दिया गया। मास्टर जी को राज्य से निर्वासित कर दिया। (बाद में उनका कुछ पता नहीं चला। शायद वे बीहड़ों में मरवा दिये गये हों)

अगले दिन जोशी जी के पैरों में मोटी-मोटी बेड़ियाँ डालकर नगर में बुरी तरह घुमाया गया। उनके परिवार को जाति से निकाल दिया। पढ़ने वाले बच्चों के नाम काट दिये गये। परिवार मेहनत- मजदूरी करता समय काटता हुआ भारत आ गया। २ वर्ष की अवधि पूरी होने से पहले ही जोशी जी जेल से भाग कर भारत में परिवार से आ मिले। पं० तुलसीराम स्वामी ने उनके पुत्र शुक्रराज (१८९३ ई0 में काशी में जन्मे) व पुत्री चन्द्रकान्ता की निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध किया। शुक्रराज सिकन्दराबाद गुरुकुल से स्नातक होकर शास्त्री बने व बाद में नेपाल जाकर आर्यसमाज का प्रचार करने लगे।

नेपाल में नये महाराज के रूप में युद्ध शमशेर सरकार गद्दी पर थे। पं० शुक्रराज शास्त्री ने नरेश के सामने ही यदुनन्दन मिश्र नामक मैथिली ब्राह्मण से संस्कृत में शास्त्रार्थ किया और उसे परास्त कर दिया। पराजय से क्रोधित हुए ब्राह्मण ने शास्त्री जी को नास्तिक कह दिया। शास्त्री जी ने कहा कि इस पर भी विचार कर लो कि नास्तिक कौन है? यदि मैं नास्तिक सिद्ध हो जाऊँ, तो मुझे गोली मार देना और यदि आप हो जायें तो मैं क्या कहूँ? यह सिंहगर्जना सुनकर सभा में सन्नाटा छा गया। शास्त्री जी ससम्मान दरबार से विदा कर दिए गए।

बालविवाह का खण्डन करते हुए स्वयंलिखित पुस्तक 'स्वर्ग का दरबार' और नेपाली भाषा में अनुवाद कर छपवाया (पूर्वार्द्ध) 'ब्रह्मसूत्र शंकर भाष्य' महाराजा को भेंट किया, तो महाराज ने अति प्रसन्न हो शास्त्री जी

को १८०० रु० पुरस्कारस्वरूप दिये। इससे ब्राह्मणों के कलेजे में साँप लौटने लगा। वे शास्त्रार्थ में तो शास्त्री जी को हरा नहीं सकते थे, अतः उन्होंने महाराजा को इनके विरोध में करने के लिए षड्यन्त्र रचा और महाराज से शिकायत की कि शुक्रराज शास्त्री नेपाल में दयानन्द मत का प्रचार कर अशान्ति फैला रहा है। यह भारत में गाँधी-सुभाष से मिलता है। यह कभी भी नेपाल का तख्ता पलट सकता है। यदि समय रहते न चेता गया और शुक्रराज को उचित सजा न दी गई, तो नेपाल के राजा को भारी क्षति पहुँच सकती है।

महाराज इन धूर्तों के जाल में फँस गये और शास्त्री जी को राजदरबार में बुलाकर सरकारी आदेश के बिना घर से बाहर न निकलने का आदेश दिया। शास्त्री जी की स्वच्छन्द आत्मा नजरबन्दी के इस पिंजरे में छटपटा रही थी, इस अन्याय के विरुद्ध बलिदान देने के लिए तैयार होकर वे नगर के सबसे बड़े चौक इन्द्र चौक में मांसाहार, शराब, बलि, सतिप्रथा, छुआछूत आदि कुप्रथाओं का खण्डन करने लगे। नेपाल की जनता ने उनका सम्मान किया। नेपालनरेश ने आशंकित होकर उन्हें जेल में डालने का आदेश दिया। जेल में उन्हें भयंकर यातनाएँ दी गईं। घर में पुत्री का जन्म हुआ और ग्यारहवें दिन दोनों माँ-बेटी तड़पकर मर गईं, पर अधिकारियों ने शास्त्री जी को मिलने की अनुमति नहीं दी।

शास्त्री जी को उनके साथियों दशरथ चन्द्र, धर्मभक्त माथेमा और गंगालाल श्रेष्ठ के साथ मृत्युदण्ड सुनाया गया। माधवराव जोशी ने धर्मवीर पुत्र को जेल जाते देखा, तो ऊँची आवाज में कहा- **बेटा! तुमने कोई पाप कर्म किया होता, तो मुझे लज्जा आती। तुम धर्म के लिए बलिदान हो रहे हो। यह मेरे और तुम्हारे लिए गौरव की बात है। हँसते-हँसते बलिदान दो।** परमेश्वर तुम्हारा कल्याण करे।

६ फरवरी, १९४१ को आधी रात को जंगल में ले जाकर भूखे ही पं० शुक्रराज शास्त्री को फाँसी पर लटका दिया गया। जब उन्हें फाँसी पर लटकाया जा रहा था, तो उन्होंने कहा- ''रस्सा तो मैं स्वयं ही बाँध लूँगा। किन्तु तुम निरपराध का वध कर रहे हो। इसका फल तुम्हें अवश्य भोगना पड़ेगा। तुम्हारा समस्त कुल नाश को प्राप्त होगा।'' शास्त्री जी के बाद गंगालाल जी को पेड़ से बाँधकर गोली मार दी गई व अन्यों को फाँसी पर लटका दिया गया।

२ जून, २००१ को संसार में यह समाचार फैल गया कि बीती रात भोजन के समय नेपाल के संवैधानिक अध्यक्ष ५६ वर्षीय वीरेन्द्र विक्रम शाहदेव की हत्या कर दी गई है तथा गोलियों की बौछार में महारानी ऐश्वर्या राजलक्ष्मी, देवीशाह उनके छोटे बेटे राजकुमार निराजन, बेटी श्रुति राणा, महाराजा की बड़ी बहन राजकुमारी शारदाशाह, शारदा के पति कुमार खड्ग विक्रमशाह और महाराजा की चचेरी बहन राजकुमारी जयन्ती शाह इस हादसे में मारे गये, यानि महाराजा के समस्त कुल का नाश हो गया।

इतिहासविद् इस घटना को ६० वर्ष पूर्व हुई उस घटना से जोड़ते हैं। हो सकता है कुछ तर्कशील लोग इससे सहमत न हों, पर यह तो सत्य है कि यदि सच्चे (परोपकारी) ब्राह्मण की आवाज दबाई जाएगी, तो हत्या की जाती हुई ब्राह्मण की वाणी राजा का विनाश कर देती है। वैदिक विद्वान् पं० अभय विद्यालंकार ने ब्रह्मगवी सूक्त के मंत्रों की व्याख्या करते हुए सार रूप में लिखा है- हे राजा! तू ब्राह्मण की 'गौ'(वाणी) को मत अदन कर,मत नाश कर। ब्राह्मण की हिंसा मत कर। इसका बड़ा घोर दुष्परिणाम होगा। मारी जाती हुई 'ब्राह्मण की गौ' राष्ट्र को मार डालती है। वैसे भी कर्मफल की वैदिक व्यवस्था तो है ही। जो जैसा बोयेगा, उसे वैसा ही काटना पड़ेगा।

(क्रमशः)

❑❑

ईश्वर का अद्भुत कौशल

(डॉ० शिवकुमार शास्त्री, मो०:-०६८१००६५०६१)

विचार-विचक्षण पाठकवृन्द! विज्ञान की चकाचौंध और अज्ञानता के कारण संसार का बहुत बड़ा वर्ग परमात्मा की दी हुई जिव्हा को झटका देकर यह कहने का दुस्साहस करता है कि ईश्वर नाम की कोई चीज नहीं, यह धर्म के नाम पर तथाकथित धार्मिक लोगों को संसार के भोले-भाले लोगों को बहकाने का एक व्यापार है।

यदि ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार न करने वाले नास्तिक से पूछा जाए - "आपको किस ने बनाया?" तो उसका एक ही रटा-रटाया जवाब होता है- "मेरे माता-पिता ने।"

इसमें कोई शक नहीं कि माता-पिता के अभाव में सन्तान पैदा नहीं हो सकती (अमैथुन सृष्टि इसका अपवाद है)। परन्तु सब कुछ तो माता-पिता नहीं। वे तो केवल साधनमात्र हैं, साध्य नहीं। थोड़ी देर के लिए हम नास्तिक की बात मान लेते हैं कि हमें माता-पिता ने बनाया। जो व्यक्ति जिस चीज को बनाता है, वह उसके बारे में अच्छी तरह से जानती भी है कि कौन सा यन्त्र या तन्त्री कहाँ लगी हुई है। उसके खराब हो जाने पर निर्माता उसे ठीक कर देता है। हमारे शरीर में कहीं विकार हुआ, तो माता-पिता चिन्तित होकर पूछते हैं कैसे हुआ? जबकि नास्तिक की दृष्टि से उनको जानना चाहिए था कि शरीर में कहाँ विकृति आई जिससे हमारे बेटा-बेटी को खांसी, जुकाम, सिरदर्द, बुखार या अन्य रोग पैदा हुए, परन्तु वे नहीं जानते। मैं उन विशिष्ट व्यक्तियों की चर्चा नहीं करता, जो शरीर विशेषज्ञ अथवा चिकित्सक हैं। पर, जनसामान्य इस बात को नहीं जानता, जबकि नास्तिक की दृष्टि से जानना चाहिए था, क्योंकि उसके हिसाब से हमारे निर्माता हमारे माता-पिता हैं।

जो जिस चीज़ को बनाता है, वह इसकी गारण्टी भी देता है। परन्तु क्या दुनिया का कोई माता-पिता इस बात की गारण्टी दे सकता है कि मेरी सन्तान इतने दिन चलेगी? इतने दिन में बुखार, खांसी या जुकाम होगा?

छोटा सा बच्चा किलकारियाँ मारता हुआ सारे घर के वातावरण को आनन्दित कर देता है। उसे रोता हुआ देखना कोई पसन्द नहीं करता। यदि वह रोता है, तो माँ तड़प उठती है, पिता अलग बेचैन है, भाई उसे खेल खिलाने में कोई कसर नहीं छोड़ता, परन्तु उसे रोता हुआ कोई भी नहीं देखना चाहता। उस की यथासम्भव सभी इच्छाएँ पूरी करने का भरसक प्रयास किया जाता है। यदि वह चन्द्रमा की माँग भी करता है, तो चतुर माँ पानी में उस की परछायीं दिखाकर उसे सन्तुष्ट करने का प्रयास करती है। परन्तु, यह निश्चिन्तता का जीवन कब तक रहेगा? संसार में एक ऐसी शक्ति है, जो थपेड़े मार कर जवानी में ला कर खड़ा कर देती है।

आ गई जवानी, दीवानी-मस्तानी। अल्हड़पन और खुमारी लिए हुए। चिन्ताओं ने घेर लिया। अब वह निश्चिन्तता का जीवन समाप्त। चारों तरफ चिन्ता ही चिन्ता। पुनरपि जवान सोचता है- "अब मैं किसी के आश्रित नहीं, किसी के सहारे की जरूरत नहीं। मैं दुनिया के किसी भी कोने में जा सकता हूँ, कमा खा सकता हूँ। अभिमान का तो क्या ठिकाना। अब वह माता-पिता, भाई-बन्धु किसी को भी कुछ नहीं समझता। परन्तु, यह जवानी भी कब तक रहेगी। **संसार में एक ऐसी शक्ति है, जो जवानी से बुढ़ापे में ला खड़ा कर देती है।** जिस बुढ़ापे को दुनिया का कोई प्राणी नहीं चाहता, जो एक बार आ जाए तो वापस जाने का नाम नहीं लेता।

जो जा के न आए, वह जवानी देखी।
जो आ के न जाए, वह बुढ़ापा देखा।।

वृद्धावस्था में शरीर की सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। रोग अड्डा जमा लेते हैं। नींद गायब हो जाती है। प्रत्येक कार्य के लिए दूसरों के सहारे की आवश्यकता पड़ती है। प्राणप्रिय पति भी वितृष्णा से देखता है। पुत्र-पौत्र, पुत्रवधु भी दूर भागते हैं। व्यक्ति सभी के उपहास का पात्र बना रहता है। इन परिस्थितियों के कारण व्यक्ति मृत्यु का आलिंगन करना चाहता है। जिल्लत की जिन्दगी से मरना अच्छा। प्रतिपल मौत को पुकारने वाले व्यक्ति के सामने यदि फन फैला कर एक साँप आ जाए, तो उस समय के हालात का अन्दाजा आप सहज ही लगा सकते हैं। **संसार का कोई प्राणी मरना नहीं चाहता, परन्तु मरते सब हैं।** यदि माता-पिता के आधीन होता तो दुनियां में कोई व्यक्ति नहीं मरता। संसार की ऐसी कौन सी निष्ठुर माँ है, जो अपने सामने अपनी सन्तान को मरने देगी? कौन ऐसा निर्दयी पिता है, जो अपनी सन्तान से प्यार नहीं करता? यदि माता-पिता के आधीन होता तो संसार में कोई कुरूप, विकलांग एवं नेत्रहीन न होता। परन्तु, संसार में सभी प्रकार के व्यक्तियों को देखा जा सकता है। इससे यह सिद्ध होता है कि यह व्यवस्था किसी और के हाथ में है।

परमपिता-परमात्मा ने हमें अमूल्य वस्तुएँ बिना मूल्य के दी हैं। यदि हम ब्रह्माण्ड की प्रत्येक वस्तु को छोड़कर केवल मात्र अपने शरीर पर ही दृष्टिपात करें तो दाँतों तले अंगुली दबानी पड़ती है।

संसार की बड़ी से बड़ी जूते की दुकान पर चले जाइये। चाहे वहाँ लकड़ी, चमड़े, प्लास्टिक, रबड़ अथवा अन्य किसी धातु आदि के जूते बनते हों और चाहे कितनी ऊँची एड़ी के बनते हों, वे एक न एक दिन घिस जाएंगे, परन्तु ईश्वर ने जो पैररूपी जूता पैदा होते समय दिया था, वही आज भी है। एक सूत भी तो नहीं घिसा और न घिसेगा।

पहले छोटी मोरी की पैण्ट का रिवाज था, फिर बैलबॉटम आ गई। पुराने सूट पड़े थे, फैंकें कैसे जाएँ? आर्किटेक्ट ने उस में कली डालकर युगानुरूप फैशन बना दिया। वस्त्र भी बेकार नहीं हुआ और युगानुरूप फैशन भी बरकरार रहा। परन्तु थोड़े से वजूद वाला बच्चा एक दिन भारी भरकम शरीर वाला बन जाता है। क्यों जी? क्या हम किसी प्लास्टिक सर्जरी वाले अथवा चर्मकार के पास गए थे कि इसमें चमड़े की कली डाल दो। यह है परमपिता- परमात्मा की रचना विशेष, जिसका मुकाबला दुनियां की कोई भी शक्ति नहीं कर सकती। शरीर का एक-एक अंग उसकी योग्यता का परिचायक है। हाड़-मांस, मल-मूत्र का शरीर भी आकर्षण का केन्द्र बना दिया।

जिस प्रकार भूख-प्यास, सुख-दुःख, सर्दी-गर्मी, शान्ति-अशान्ति, आनन्द, वायु आदि आँखों से दिखाई नहीं देते, पुनरपि इनकी सत्ता सब स्वीकार करते हैं। एवमेव वह परमात्मा चर्मचक्षुओं का विषय न होने के कारण हमें आँखों से दिखाई नहीं पड़ता, परन्तु ब्रह्माण्ड की अद्भुत रचना को देखकर रचनाकार का भान होना स्वाभाविक है। बिना रचनाकार के रचना नहीं हो सकती। इतनी बड़ी सृष्टि बिना बनाए नहीं बन सकती। अतः स्वीकार करना पड़ता है कि ईश्वर की सत्ता है और वह अद्भुत कलाकार है। कवि के शब्दों में-

धन तेरी कारीगरी करतार।
नरतन सा चोला सींव दिया,
सुई-धागा हाथ में कहीं नहीं।
बरसे तो भर दे जल जंगल,
आकाश में सागर कहीं नहीं।
पत्ते-पत्ते की कतर नियारी,
हाथ कतरनी कहीं नहीं।
भोजन दे कीड़ी से हाथी तक,
तेरे लगे भण्डारे कहीं नहीं।
धन तेरी कारीगरी करतार।

❑❑

मांस भक्षण, भारतीयता, भारतीय विचारधारा

(कृष्ण चन्द्र गर्ग,पंचकूला, दूर०:-०१७२-४०१०६७६)

(समय- समय पर स्वामी विवेकानन्द के विभिन्न विषयों- जैसे मांसाहार, भारतीय नारी, भारतीयता, भारतीय विचारधारा इत्यादि पर विचार सुनने को मिलते रहे हैं। यहाँ उनका संकलन इस दृष्टि से दिया जा रहा है कि पाठक स्वयं देखें कि वे भारतीय संस्कृति के कितने पोषक थे? और वे देश को किस दिशा में ले जाना चाहते थे?- सम्पादक)

स्वामी विवेकानन्द के विचार अद्वैत आश्रम कोलकाता द्वारा प्रकाशित निम्नलिखित दो प्रामाणिक पुस्तकों के आधार पर दिए जा रहे हैं-

I- VIVEKANANDA- A Biography by Swami Nikhilananda, 33rd Reprint, July 2016

II- Teachings of SWAMI VIVEKANANDA, 31st Reprint, January 2016

मांसाहार-

1. Orthodox brahmins regarded with abhorrence the habit of eating animal food. The Swami courageously told them about the eating of beef by the brahmins in Vedic times. One day, asked about what he considered the most glorious period of India history. the Swami mentioned the Vedic period, when 'five brahmins used to polish off one cow.' He advocated animal food for the Hindus if they were to cope at all with the rest of the wrold in the present reign of power and find a place among the other great nations.

Book I, Pages 108-109

अर्थ- ब्राह्मण मांसाहार की आदत से घृणा करते थे। स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें बताया कि वैदिक काल में ब्राह्मण गोमांस खाते थे। एक दिन यह पूछे जाने पर कि भारत के इतिहास में वे कौन सा काल सबसे अधिक गौरवपूर्ण मानते हैं, तब स्वामी जी ने कहा कि वैदिक काल 'जब पाँच ब्राह्मण एक गाय को चट कर जाते थे।' स्वामी जी कहते थे कि यदि हिन्दू शेष संसार से मुकाबला करना चाहते हैं और बड़े राष्ट्रों में स्थान बनाना चाहते हैं, तो उन्हें मांस खाना चाहिए।

2. To the accusation from some orthodox Hindus that the Swami was eating forbidden food at the table of infidels, he retorted :

Do you mean to say I am born to live and die as one of those caste-ridden, superstitious, merciless, hypocritical, atheistic cowards that you only find among the educated Hindus? I hate cowardice. I will have nothing to do with cowards. I belong to the world as much as to India, no humbug about that. What country has a special claim on me? Am I a nation's slave?... I see a greater power that man or God or Devil at my back. I require nobody's help. I have been all my life helping others.

To another Indian devotee he wrote in similar vein :

...I the people of India want me to keep strictly to my Hindu diet, please tell them to send me a cook and money enough to keep him.

Book I, Page 144

अर्थ- जब कुछ हिन्दुओं ने स्वामी विवेकानन्द पर आरोप लगाया कि वे विधर्मियों के साथ निषिद्ध खाना खा रहे हैं, तब स्वामी जी बोले- क्या तुम समझते हो कि मैं उन पढ़े-लिखे हिन्दुओं में से एक जीने और मरने के लिए पैदा हुआ हूँ, जो जातपात में फंसे, अन्धविश्वासी, निर्दयी, पाखण्डी, नास्तिक भीरु (डरपोक) हैं। मैं भीरुता से नफरत करता हूँ। भीरुओं के साथ मैंने कुछ नहीं करना। मेरा जितना सम्बन्ध भारत से है, उतना ही सम्बन्ध संसार से है, इसमें झूठ नहीं है। किस देश का मेरे ऊपर विशेष अधिकारी है? क्या मैं देश का गुलाम हूँ?.... मैं अपने पीछे एक शक्ति को देखता हूँ, जो

मनुष्य से, परमात्मा से और शैतान से भी बड़ी है। मुझे किसी की सहायता की जरूरत नहीं है। मैं सारी उमर दूसरों की सहायता करता रहा हूँ।

एक और भारतीय श्रद्धालु को उन्होंने लिखा... यदि भारत के लोग चाहते हैं कि मैं दृढ़ता से हिन्दू भोजन पर ही रहूँ, तो कृपया उन्हें कह दो कि वे मेरे लिए एक रसोइया भेज दें और उस पर जो खर्च आए, वह भी भेज दें।

3. Is God a nervous fool like you that the flow of His river of mercy would be dammed up by a piece of meat? If such be He, His value is not a pie.

Book II, Page 70

अर्थ- क्या परमात्मा तुम्हारी तरह घबराया हुआ मूर्ख है कि मांस के एक टुकड़े से उसकी दया रूपी नदी का प्रवाह रुक जाएगा। यदि वह ऐसा है, तो उसका मूल्य एक पाई भी नहीं है।

4. The taking of life is undoubtedly sinful. But so long as vegetable food is not made suitable the human system, through progress in Chemistry, there is no alternative but meat-eating, So long as man shall have to live a Rajasika (active) life under circumstances like the present, there is no other way except through meat-eating.

Book II, Page 70

अर्थ- जीवों को मारना निस्सन्देह पापकर्म है परन्तु जब तक रसायन शास्त्र के द्वारा शाकाहार को मनुष्य शरीर के उपयुक्त नहीं बनाया जाता, तब तक मांसाहार के बिना कोई विकल्प नहीं है। जब तक मनुष्य को राजसी जीवन जीना पड़ेगा जैसा कि आज के हालात में है, मांसाहार के सिवाए कोई चारा नहीं है।

5. Rather let those belonging to the upper ten, who do not earn their livelihood by manual labour, not take meat; but the forcing of vegetarianism upon those who have to earn their bread by labouring day and night, is one of the causes of the 7 lok II, Page 70-71B

अर्थ- ऊपर के दस लोग जो शारीरिक मेहनत से रोजी रोटी नहीं कमाते बेशक मांस न खाएं, पर जो लोग दिन- रात मेहनत करके जीवनयापन करते हैं, उनके ऊपर शाकाहार थोपना हमारी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता छिनने का एक कारण है।

6. I say, eat large quantities of fish and meat, my boy!

Book II, Page 71

अर्थ- मेरे लड़के, मैं कहता हूँ, मछली और मांस खूब खाओ।

7. To eat meat is surely barbarous and vegetable food is certanly purer - who can deny that?

Book II, Page 71

अर्थ- मांस खाना निश्चित तौर पर राक्षसी है और शाकाहार निस्सन्देह पवित्र है- इस बात से कौन इनकार कर सकता है?

इस्लाम-

1. Therefore we are firmly persuaded that without the help of practical Islam, the theories of Vedantism, however fine and wonderful they may be, are entirely valueless to the vast mass of mankind.

Book I, Page 284

अर्थ- इसलिए हमें दृढ़ विश्वास है कि व्यावहारिक इस्लाम की सहायता के बिना वेदान्त के सिद्धान्त, कितने ही अच्छे और विलक्षण क्यों न हो आम लोगों के लिए किसी काम के नहीं।

2. For our own motherland a junction of the two great systems. Hinduism and Islam - Vedantic brain and Islamic body - is the only hope.

Book I, Page 284

अर्थ- हमारी अपनी मातृभूमि के लिए दो महान व्यवस्थाओं हिन्दुत्व तथा इस्लाम - वेदान्त दिमाग और इस्लामिक शरीर का मेल ही एकमात्र आशा है।

3. I see in my mind's eye the future perfect India rising out of this chaos and strife, glorious and invincible, with Vedantic brain and Islamic body.

Book I, Page 285

अर्थ- मैं अपने मन में वेदान्तिक दिमाग और

इस्लामिक शरीर के द्वारा भविष्य का श्रेष्ठ भारत देखता हूँ, जो इस झगड़े और मुसीबत से निकला होगा और शानदार और अजेय होगा।

4. The Mohammedans came upton them slaughtering and killing : slaughtering and killing they overan them.

Book II, Page 151

अर्थ- मुसलमान भारतीयों को कत्ल करते हुए आए। कत्ल करते हुए उन्होंने भारतीयों को रौंद डाला।

5. For instance, the mohammedan religion allows Mohammedans to kill all who are not of their religion. It is clearly stated in the Koran, "Kill the infidels if they do not become Mohammedans".

Book II, Page 189

अर्थ- उदाहरण के तौर पर, मुसलमानों का मजहब मुसलमानों को उन सभी को मारने की आज्ञा देता है जो उनके मजहब के नहीं हैं। यह कुरान, में स्पष्ट तौर पर बताया गया है, "दूसरे मजहब वाले अगर मुसलमान नहीं बनते, तो उन्हें जान से मार डालो।"

अमरीकी महिलाएं-

1. Well, I am almost at my wit's end to see the women of this country (USA). They take me to the shops and everywhere, as if I were a child. They do all sorts of work - I cannot do even a sixteenth part of what they do. They are like Lakshmi (the Goddess of Fortune) in beauty, and like Saraswati (the Goddess of Learning) in virtues - they are the Divine Mother incarnate, and worshipping them, one verily attains perfection in everything. Great God! Are we to be counted among men? If I can raise a thousand such Madonnas - Incarnations of the Divine Mother - In our country, before I die, I shall die in peace. Then only will your countrymen become worthy of their name. I am really struck with wonder to see the women here.

Book II, Page 136-137

अर्थ- यहाँ (अमेरिका) की स्त्रियों को देखकर मेरा दिमाग चकरा गया है। वे मुझे दुकानों पर तथा हर स्थान पर ले जाती हैं, जैसे कि मैं एक बच्चा हूँ। वे सभी प्रकार के काम करती हैं- मैं उसका सोलहवां भाग भी नहीं कर सकता, जो वे करती हैं। वे सुन्दरता में लक्ष्मी (भाग्य की देवी) की तरह हैं और अच्छाइयों में सरस्वती (विद्या की देवी) की भान्ति हैं- वे दैवी मां की अवतार हैं और उनकी पूजा करके मनुष्य हर क्षेत्र में निश्चित तौर पर पूर्णता प्राप्त करता है। ईश्वर महान है! क्या हम पुरुषों में गिने जाएं? अगर मैं मरने से पहले अपने देश में ऐसी एक हजार मेडोना- दैवी मां की अवतार तैयार कर सका, तो मैं शान्ति से मरूँगा। तभी आपके देश के आदमी अपने नाम को सार्थक करेंगे। यहाँ की स्त्रियों को देखकर मैं सचमुच हैरान हूँ।

2. India cannot yet produce great women, she must borrow them from othernations.

Book I, Page 289

अर्थ- भारत अभी महान स्त्रियों को पैदा नहीं कर सकता, उसे उन्हें दूसरे देशों से उधार लेना ही पड़ेगा।

पंथ (मजहब)-

1. At World's Parliament of Religion,s Chicago, 11 September, 1893

We believe not only in universal tolerance, but we accept all religions as true.

अर्थ- हम सिर्फ सार्वभौमिक सहनशीलता में ही विश्वास नहीं रखते, अपितु हम सभी पंथों (मजहबों) को सत्य स्वीकार करते हैं।

2. All religion are, at bottom, alike.

Book II, Page 40

अर्थ- मूल रूप से सभी पंथ (मजहब) एक जैसे हैं।

ईसा मसीह-

1. If I, as an Oriental have to worship Jesus of Nazareth, there is only one way left to me, that is, to worship him as God andnothing else.

Book II Page 34

अर्थ- यदि मुझे एक पूर्वीय के तौर पर ईसामसीह की पूजा करनी हो, तो सिर्फ एक तरीका बचा है, वह है, उसे भगवान मान कर और कुछ नहीं।

2. The Christ who is the Incarnation of God,

शेष पृष्ठ २५ पर

"कर्मफल-रहस्य"

(चन्द्रपाल सिंह सिरोही, अलीगढ़ मो०:-०९७१९६९५७७५५)

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। (महर्षि दयानन्द सरस्वती)

सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।

योगदर्शन साधनपाद - १३। मूल के रहते हुए उनका फल १. जाति (योनि), २. आयु और ३. भोग होते हैं।

उपरोक्त सूत्र के विद्वानों ने अलग-अलग अर्थ किए हैं।

१. कुछ आयु को निश्चित मानते हैं।

२. कुछ आयु का घटना-बढ़ना मानते हैं।

३. कुछ आयु को स्वांसों पर आधारित मानते हैं।

इनमें सभी सच्चे नहीं हो सकते। हम कहीं पर गलती कर रहे हैं। अतः सत्य क्या है, जानना आवश्यक है।

महर्षि पतंजलि ने जिस समय योगशास्त्र लिखा, उस समय बाल की खाल निकालने वाले अनेकों ऋषि-महर्षि थे। अनेकों वाद-विवाद के उपरान्त योगशास्त्र को दर्शन की कोटि में माना गया होगा। मगर हम अपनी अल्पबुद्धि से मनमाने अर्थ कर रहे हैं।

मैं १९८० से इस विषय पर अध्ययन कर रहा हूँ। कालाकाल मृत्यु आदि विषयों से सम्बन्धित दर्जनों पुस्तकें मेरे पास हैं। विभिन्न पत्रिकाओं में छपे विद्वानों के लेख भी पढ़े हैं। आदरणीय आचार्य राजवीर सिंह शास्त्री जी ने इस विषय पर अथक प्रयत्न किया है। ज्यों-२ अध्ययन करता गया, जिज्ञासा बढ़ती गई। लगभग ४० वर्ष के पठन-पाठन व अनुभव से मैंने जो निष्कर्ष निकाला है, विद्वानों की विचार- गोष्ठी में रख रहा हूँ। विद्वान्, मनीषी अपने विचारों से अवगत करायेंगे, ऐसी आशा है।

स्वमन्तव्य लिखने से पहले उपरोक्त सूत्र पर विद्वानों के विचारों पर संक्षिप्त रूप से विचार करते हैं।

सतिमूले तद्विपाको.... सूत्र से पहले **क्लेश मूलः कर्माशयो.....** (योगदर्शन साधनपाद-१२) सूत्र है।

अर्थ- क्लेश का मूल दृष्ट-अदृष्ट जन्मों के कर्मों की वासनायें हैं, जो चित्त में कर्म की रेखा के रूप में संचित रहती हैं। इस को कर्माशय कहते हैं। परमपिता-परमात्मा उन्हीं वासनाओं के फल भोगने के लिए 'जात्यायुर्भोगाः' अर्थात् तीन वस्तुएं प्रदान करता है -

१. जाति :- (योनि) मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि।

२. आयु :- भोग भोगने का समय (काल)

३. भोगः- जन्म-जन्मान्तरों में किए अच्छे-बुरे कर्मों के फल(भोग), जिनको जीव विभिन्न योनियों में सुख-दुःख रूप में भोगेगा।

जाति और भोग पर विद्वानों में मतभेद नहीं है। आयु (समय) पर मतभेद है। अतः इसी पर विचार करते हैं।

समय- समय दो प्रकार को होता है- एक वह, जो जगत की उत्पत्ति स्थिति और नाश का कारण होने से **अनन्त** है। दूसरा वह जो **ज्ञानगम्य** है। अर्थात् गणित के द्वारा जानने योग्य।

ज्ञानगम्य काल भी दो प्रकार का है। एक- मूर्त या स्थूल दूसरा- सूक्ष्म, जिसका परिमाण नहीं हो सकता। प्राण से लेकर कल्पादि पर्यन्त काल को मूर्त काल एवं त्रुटि आदि (अति सूक्ष्म काल जो व्यवहार में नहीं आता) को अमूर्त काल कहते हैं। सेकिंड के १/३ ३७५० भाग को त्रुटि कहते हैं।

(सूर्यसिद्धान्त प्रथम् अध्याय-१०, ११ श्लोक)

अर्थात् ईश्वरीय काल (समय) अनन्त है। उसका आदि अन्त नहीं है। दूसरा मानुषीकृत है, जिसको हम

घन्टा मिनट सैकिंड, दिन, रात, महीना, वर्षो में विभाजित करके गणना करते हैं। मगर हम मानुषी काल से आयु निश्चित नहीं कर सकते क्योंकि भारतवर्ष में २४ घन्टे का एक दिन-रात, ३० दिन का एक माह और १२ महीनों का एक वर्ष होता है। मगर इसी पृथ्वी पर उत्तरी ध्रुव पर ६ माह का एक दिन और ६ माह की एक रात होती है। अर्थात् दिल्ली का एक वर्ष, ध्रुवों पर एक दिन होता है। चन्द्रमा, मंगलगृह, शनिग्रह, बुध, शुक्रग्रह, आदि गृहों पर दिन रात, माह, वर्ष में बहुत अन्तर है क्योंकि सभी गृहों की चाल अलग- अलग है। तो हम आयु को किस गृह के पैमाने से नापेंगे। परमपिता-परमात्मा का नियम तो पूरे ब्रह्मांड में एक ही है। उसी कसौटी पर सभी प्रमाणों को कसना चाहिए, नहीं तो अन्य गृहों पर रहने वाले जीवों की आयु पृथ्वी पर रहने वाले जीवों से भिन्न होगी, जो ईश्वरीय व्यवस्था के प्रतिकूल है।

१. क्या आयु निश्चित है- निश्चित आयु मानने वाले पिछले जन्म (जन्मों के नहीं) के कर्मों के आधार पर वर्तमान जन्म की आयु निश्चित मानते हैं। जो घटाई या बढ़ाई नहीं जा सकती, कुछ उदाहरण देते हैं। माननीय ओ३म् प्रकाश शास्त्री जी कहते हैं कि यदि दिल्ली से कानपुर की ट्रेन टिकट ली है, तो कानपुर ही उतरना पड़ेगा। इस पर हमारा कहना है कि कानपुर पहुँचना हमारा लक्ष्य है। यदि ट्रेन खुर्जा पर खराब हो गई, तो दूसरी ट्रेन से, दूसरी भी खराब हो गई, तो तीसरी से, यदि वह भी खराब हो गई, तो बस से, कार से, अन्य किसी साधन से कानपुर पहुँचेंगे। कानपुर पहुँचना साध्य है, वाहन साधन है। इसमें समय की पाबन्दी नहीं है। पहली ट्रेन से हम शीघ्र पहुँच जाते मगर स्टेशन पर लगी समय सारणी के अनुसार कितनी ट्रेनें ठीक समय पर पहुँचती हैं। उसी प्रकार जो भोग हमें जिस योनि (जाति) में भोगने हैं, उन्हें भोगने के लिए तब तक जन्म लेते रहेंगे, जब तक कि भोग समाप्त न हो जायें। यहाँ भोग साध्य है, योनि (जाति) साधन है। अपवाद छोड़ कर सभी भोग एक जन्म में भोगे तो नहीं जा सकते।

श्री फूलचन्द शर्मा निडर जी भी पिछले जन्म के कर्मों के आधार पर वर्तमान जन्म की जाति की आयु निश्चित मानते हैं। यथा-

क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे।
अयं यः पुरो विभिनत्योजसा मन्दानः शिऽयन्धसः।।
(सामवेद)

अर्थः यह जीव इस संसार में शरीर और इन्द्रियों के साथ कितनी आयु तक उपभोग करता है, जिसको द्यौ और पृथ्वी का स्वामी आनन्दस्वरूप परमात्मा ही जानता है और वही अपनी सामर्थ्य से समय पर उनकी मृत्यु करता है। इसमें आयु निश्चित है।

विस्तार में न जाकर हमारा निडर जी से एक प्रश्न है कि मान लो पिछले जन्म के कर्मों के आधार पर जीव को मानवयोनि मिली, उस जीव के मनुष्य योनि में आने के कर्म केवल इतने हैं कि २, ४ माह गर्भ में रह कर मर गया। या पैदा होते ही या १, २ वर्ष जीवित रहा और मर गया। जैसा कि प्रत्यक्ष देखने में आता है। इस पर हमारा प्रश्न है कि गर्भ में या १, २ वर्ष में जीवात्मा ऐसा कोई कर्म नहीं कर सकता, जिससे उसे अगले जन्म में मनुष्य योनि मिले। पिछले जन्म के कर्मों के आधार पर २, ४ माह गर्भ में या १, २ वर्ष जिन्दा रहा, पिछले जन्म का भोग समाप्त हो गया। नया कर्म मनुष्ययोनि में आने का वर्तमान जन्म में कोई किया नहीं, तो निडर जी बतायें कि उस जीव को भविष्य में मनुष्ययोनि मिलगी या नहीं। यदि हाँ, तो कारण बतायें। यदि नहीं, तो उस जीव की भोगयोनियों के भोग भोगने के बाद क्या गति होगी। क्या जीव हमेशा के लिए मुक्त हो जायेगा, जो असम्भव है।

आयु निश्चित मानने वालों से एक प्रश्न और है जो उनके सिद्धान्त को भस्मीभूत कर देगा।

जीवन मुक्त :- जब योगी अत्यन्त पुरुषार्थ तथा तपस्या से कर्मों की वासनाओं को दग्ध कर देता है,

तो उसके सभी प्रकार के क्लेश नष्ट हो जाते हैं। योगी परमपिता- परमात्मा की गोद में स्थिर होकर जीवनमुक्त हो जाता है। यथा...

१. न वा उ एतन्म्रियसे .... ऋग्वेद -१-१६२-२१

२. नृचक्षसो अनिमिषन्तो ..... ऋग्वेद -१०-६३-४

३. ये देवानां यज्ञया ..... ऋग्वेद -७-३५-१५

४. यदा पंचावतिष्ठन्ते.... कठोपनिषद् -६-१०

५. अजीर्यतामृतानामुपेत्य ... कठोपनिषद् -१-२८

६. विधेम ते परमे जन्मन्नग्ने ... यजु. १७-७५

७. सत्त्वपुरुषयोः शद्धि साम्ये ... योगदर्शनविभूति पाद - ५४- आदि अनेकों उदाहरण हैं।।

आयु निश्चित मानने वाले बतायें कि जब योगी ने अपने भोगों को दग्धबीज कर दिया, (भोगोन्मुख होने से रोक दिया) तो वह योगी किस कारण से संसार का उपभोग कर रहा है। उसे तो तुरंत ही मर जाना चाहिए। आयु निश्चित मानने वाले बतायें कि आयु कितनी है जिसको घटाया या बढ़ाया नहीं जा सकता।

२. क्या आयु घटाई या बढ़ाई जा सकती हैः- इस सिद्धान्त को मानने वालों से भी वही प्रश्न है कि आयु कितनी थी, जिसको अच्छे कर्मों से बढ़ा लिया या बुरे कर्मो से घटा लिया। वेद शास्त्र, उपनिषद् मनुस्मृति, सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों में आयु को बढ़ाने घटाने के अनेकों प्रमाण हैं। यथा ....

१. कुर्वन्नेवेह कर्माणि .... यजु. -४०-२

२. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य... यजु. -३-६२

३. दीर्घामनु प्रसितिमायुषे .... यजु. १-२०

४. शतं हिमा सूर्य स्या .... यजु. २-२७

५. भूयश्च शरदः शतात् .... यजु. ३६-२४

६. अग्नऽआयुश्ंषि पवस .... यजु. -३५-१६

७. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते ... अथर्व. -१६-६३ आदि-आदि अनेकों प्रमाण हैं। मनुस्मृति, महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों में आयु बढ़ाने घटाने के सैकड़ों मंत्र, श्लोक प्रमाणस्वरूप लिखे हैं। जो विद्वानों के लिए सर्वविदित हैं। हम सभी मंत्रों, श्लोकों को लिख कर लेख को बढ़ाना नहीं चाहते। आयु का घटना, बढ़ना क्या है, कैसे है, स्वमन्तव्य में प्रकाश डालेंगे।

३. क्या आयु स्वांसों पर आधारित हैः- किसी भी ग्रन्थ में इसका कोई प्रमाण नहीं है। हमारे जीवन के लिए वायु, अग्नि, अन्न, जल, आदि की महती आवश्यकता है। किसी के भी अभाव से मृत्यु हो जाती है। स्वांस (वायु) प्राण का भोजन है। शरीर की अन्य क्रियाओं की तरह स्वांस लेना एक सामान्य क्रिया है। जैसे हृदय का धड़कना, नाड़ी चलना, पलक झपकना, भूख- प्यास लगना, सोना, जागना आदि, सभी क्रियाओं के मेल से जीवन चलता है। स्वांसों की गिनती पर आधारित आयु मानने वाले कछुए का उदाहरण देते हैं। कछुआ कम स्वांस लेता है और १०० वर्षों से अधिक जीता है। मगर सभी कछुए १०० वर्ष नहीं जीते। अल्प आयु में ही मार कर खा लिए जाते हैं। १०० वर्ष कछुए की औसत आयु है। गुलाम भारत में मनुष्य की आयु २८ वर्ष थी। आज ६८ वर्ष है। किसी समय भारत में मनुष्य की औसत आयु १०० वर्ष रही होगी। भिन्न-भिन्न योनियों के कर्म, भोग अलग अलग हैं, उसी के अनुसार उनकी आयु भी अलग- अलग है। एक दूसरे की तुलना करना ठीक नहीं है। हाथी और खरगोश की क्या तुलना है। जलचर, थल पर और थलचर जल में जीवित नहीं रह सकते। संसार आश्चर्यजनक अजूबों से भरा है।

निश्चित आयु वाले कहते हैं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे योगी, आजन्म ब्रह्मचारी की मृत्यु ५६ वर्ष में हो गई क्योंकि आयु निश्चित थी। निश्चित न होती, तो उन्हें ३००, ४०० वर्ष जीना चाहिए था।

स्वांसों पर आधारित जीवन मानने वाले भी स्वामी दयानन्द सरस्वती का ही उदाहरण देते हैं। कहते हैं कि स्वामी जी १८ घन्टे की समाधि लगाते थे फिर भी ५६ वर्ष ही जीये। यदि वह समाधि नहीं लगाते, तो अपनी स्वासों को शीघ्र ही समाप्त कर २० या ३० वर्ष ही जीवित रहते। बाग्जाल के सिवाय इनके पास शास्त्रों

का कोई प्रमाण नहीं है।

४. कालाकाल मृत्यु- अनिश्चित आयु मानने वाले अकाल मृत्यु मानते हैं। निश्चित आयु मानने वाले अकाल मृत्यु नहीं मानते। कहते हैं कि प्रत्येक जीव की आयु निश्चित है। दुर्घटना तो साधन है। भोग भोगने में सहायक है। हमारा मत है कि अकाल मृत्यु नहीं होती, क्योंकि काल (समय) अनन्त है। हर समय रहता है।

अकाल मृत्यु क्या है और समाज में क्यों प्रचलित है, इस पर विचार करते हैं। मृत्यु दो प्रकार से होती है- एक स्वाभाविक और दूसरी भौतिक, दैविक घटनाओं से होती है। जन्म से लेकर बुढ़ापे तक जीने के बाद मृत्यु को स्वाभाविक मृत्यु कहते हैं। इसमें जीवात्मा कर्म करते हुए, भोग भोगते हुए ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों के अशक्त होने तक जीवन जीता है। ऐसी मृत्यु दुःखदाई होने पर भी परिवारी जन विमान निकालते हैं, ढोल ताशे बजाते हैं। दूसरी मृत्यु दुर्घटना से किसी जीव के पाप-कर्म द्वारा कत्ल करना, पानी में डूबना, अग्नि में जलना, भूकम्प, सुनामी सर्पदंश आदि अनेकों कारणों से होती है। उसे अकाल मृत्यु कहते हैं। इसे अकाल मृत्यु इसलिए कहते हैं क्योंकि उस मनुष्य की सभी इन्द्रियाँ स्वस्थ थीं कर्म करने और भोगने में सक्षम थीं। अभी वह अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और संसार का बहुत उपकार कर सकता था। मगर अपने कर्तव्यों को पूरा करने से पहले ही भोतिक या दैविक आपदा से मृत्यु हो गई। अकाल मृत्यु का तात्पर्य यहाँ किसी समय (काल) से नहीं है। यहाँ अकाल मृत्यु का अर्थ उस समय से है, जिसमें वह जीवात्मा अभी बहुत से कर्म कर सकता था और किये कर्मों के भोगों को भोग सकता था। परमात्मा तो उस जीव को बाकी बचे भोगों को भोगने के लिए दोबारा उसी योनि (जाति) में नियमानुसार भेज देगा मगर उसकी मृत्यु से परिवार, समाज और राष्ट्र की जो क्षति हुई, उसी को ध्यान में रखकर अकाल मृत्यु कह देते हैं। जो व्यवहारिक भाषा में गलत नहीं है। अगर वही मनुष्य ५, १०, २०, ३०, ५० वर्ष की आयु में किसी भयंकर बीमारी से जर्जर होकर मरता है, तो कोई उसे अकाल मृत्यु नहीं कहता। सभी कहते हैं अच्छा हुआ दुःख से छूट गया। क्योंकि वह कोई भी कर्म करने व भोग भोगने के लायक नहीं रहा था।

५. १०० वर्ष समय (आयु) की इकाई है :- हमारे शास्त्रों में कम से कम १०० वर्ष की कामना तो की ही है, शतात् कह कर ३००, ४०० वर्ष तक स्वस्थ इन्द्रियों के साथ जीने की भी कामना की है। स्वस्थ जीवन जीने और आयु बढ़ाने के प्रमाण हम ऊपर दे चुके हैं। १०० वर्ष मनुष्य योनि में जीने की इकाई है। औसत आयु है। **कैसे समझें :-** हम व्यवहार में एक, दो, तीन के बाद दसियों, बीसियों, पचासों, सैंकड़ों, हजारों, लाखों, करोड़ों, अरबों, का शब्द उच्चारण करते हैं। व्यवहार में, तीस, चालीस, साठ, अस्सी, नब्बे, दो सौ, तीन सौ से नौ सौ तक ग्यारह सौ से नब्बे हजार तक, लाख से करोड़ के बीच के अंकों का उच्चारण दैनिक प्रयोग में नहीं करते। मानव योनियों में हम दस वर्ष, बीस वर्ष तक ज्ञानार्जन करते हैं। पचास वर्ष की आयु तक हम जवान होते हैं। कर्म करने और भोगने में सक्षम रहते हैं। पचास वर्ष के बाद हमारी कार्यक्षमता घटने लगती है और १०० वर्ष तक आते- आते हमारी दसों इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं। हम कर्म करने व भोग भोगने लायक नहीं रहते। शास्त्रकारों ने इसी बात को ध्यान में रखकर इन्द्रियों के शिथिल होने तक कम से कम १०० वर्ष जीने की कामना की है। यदि इन्द्रियाँ १०० वर्ष में भी कार्य करने लायक हैं, तो शतात् कह कर तीन सौ चार सौ वर्षो तक जीने की भी कामना की है। इस प्रकृति में हम १००० वर्ष जी नहीं सकते इसलिए १०० वर्ष को इकाई मानकर कम से कम १०० वर्ष जीने की कामना की है।

६. अपने और दूसरे जीवों के कर्म :- आयु निश्चित मानने वाले कहते हैं कि जीवात्मा अपने ही किए कर्मों का भोग भोगता है। दूसरे जीव के कर्म भोग भोगने में केवल सहायक हैं। मनुष्य की आयु निश्चित

है, उसे तो मरना ही था उसे हमने मार दिया। हम केवल साधन मात्र हैं। इस पर हमारा कहना है कि राजा किसी अपराधी को मृत्युदंड देता है। जल्लाद राजा की आज्ञा से उसे फाँसी दे देता है। जल्लाद कातिल नहीं माना जाता क्योंकि उसने तो राजाज्ञा का पालन किया है। इसी तरह यदि हम किसी का वध कर देते हैं, तो न्यायालय हमें दंड क्यों देता है। हम तो परमात्मा के दंड विधान में साधन मात्र हैं। दंड तलवार को नहीं तलवार से काटने वाले को मिलता है क्योंकि तलवार तो केवल साधन मात्र है। प्रश्न होता है कि फिर जीव का वह कौन सा स्वतंत्र कर्म है, जिसका फल (भोग) बनेगा।

हमारा मत है कि जीव का कोई भी कर्म स्वतंत्र नहीं है, जो अपने लिए हो। हम जो भी कार्य करते हैं, उसका दूसरे तथा दूसरे जीवों के कर्मों का फल हम भोगते हैं। जीवों के अच्छे बुरे कर्मों से ही अन्य जीवों को सुख, दुःख मिलते हैं। यथा

१. यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत् पुत्रेषु नप्तृषु।
न त्वेवन्तु कृतोऽधर्मः कर्त्तुर्भवति निष्फलः।।

अर्थ- यदि अधर्म का फल कर्ता की विद्यमानता में न हो, तो पुत्रों और पुत्रों के समय न हो, तो नातियों के समय में अवश्य प्राप्त होता है। किन्तु यह कभी नहीं हो सकता कि कर्ता का किया हुआ कर्म निष्फल होवे। (संस्कार विधि ग्रहाश्रम)

२. दु:ख तीन प्रकार के हैंः- १. आध्यात्मिक २. आधिभौतिक, ३. आधिदैविक।

अधिभौतिक दुःख शत्रु से व्याघ्र से सर्प आदि दूसरे जीवों से होता है। (सत्यार्थ प्रकाश प्रथम समु.)

अथ त्रिविधि दुःखात्यन्त निवृतिः :-सांख्यदर्शन -१-१

३. एक अपराधी को छोड़ने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है। (स.प्र. समु. ७)

४. पुत्र को पुत्र इसलिए कहते हैं कि वह माता-पिता को दु:खों से बचाता है। (मनु. ९/१३८) आदि अनेकों प्रमाण हैं। संसार में जीवात्मा अकेला नहीं जी सकता। हजारों लाखों जीवों के कर्मों के सहयोग से हमारा जीवन चलता है। हमारे शरीर में भी लाखों करोड़ों जीवात्माओं का वास है, जो जीवन चलाने में सहायक हैं। एक उदाहरण से समझें। हम बाजार में एक सुईं खरीदते हैं, सुई कैसे बनी, विचार करें। सुई बनाने के लिए हजारों श्रमिकों ने खान से लोहा निकाला। जिन उपकरणों से लोहा निकाला, उन औजारों को बनाने में हजारों श्रमिक लगे हैं। यथा परात, गैती, फावड़ा, कुदाल आदि। कच्चे लोहे को जिस साधन से ट्रक, माल गाड़ी आदि से कारखाने पहुँचाया उस कारखाना, ट्रक, रेल आदि वनों में लाखों मजदूर लगे हैं। मशीनें लगी हैं। ईंट, सीमेन्ट, बालू, बदरपुर, सरिया, गाटर, पटिया आदि सैकड़ों प्रकार का सामान बनाने, श्रमिकों के कपड़े, जूते, चप्पल, भोजन, फल, दूध आदि सामान उपलब्ध कराने में कितने श्रमिकों का श्रम लगा है, अनुमान नहीं लगा सकते। एक रुपये में सुईं खरीदी। रुपये बनाने की टकसाल में, रु. का कागज बनाने के मिल में कितने श्रमिक लगे हैं। सोच भी नहीं सकते। अर्थात् एक सुईं खरीदने पर हम लाखों करोड़ों जीवात्माओं के ऋणी हो गये। हमारे कर्म से भी अन्य जीव कर्जदार होते हैं। इसी ऋण को उतारे- चढ़ाने का सिलसिला जन्म- जन्मान्तर तक चलता रहता है। अर्थात् जीवों के कर्मों के फलों के आदान प्रदान से ही सृष्टि चलती है।

७. सकाम निष्काम कर्म :- हमारे शास्त्र निष्काम कर्म करने की आज्ञा देते हैं। कर्मण्येवाधिकारस्ते.... गीता -२/४७)

हमारा मानना है जीव का कोई भी कर्म निष्काम नहीं होता। परमपिता- परमात्मा प्रत्येक कर्म का फल देता है। किसी दुर्घटना में घायल व्यक्ति को हमने अस्पताल पहुँचा दिया, उसके प्राण बच गये। इसमें हमारा कोई लोभ- लालच नहीं है। केवल मनुष्यता के नाते हमने ये कर्म किया। परन्तु परमात्मा तो हमको

इस शुभकर्म का सुखरूप फल देगा ही। इसीलिए गीताकार ने कहा कि जीव को केवल कर्म करने का अधिकार है। कर्म करने के बाद वह परमात्मा की न्याय व्यवस्था में चला जाता है। इसलिए कर्म करो फल की इच्छा मत करो, फल परमात्मा देगा ही। **अवश्यमेव भोक्तव्यम् कृतं कर्म शुभाशुभम्** जब प्रत्येक कर्म का फल मिलना ही है, तो निष्काम कर्म कहाँ रहा, इच्छा करो या मत करो।

मगर इच्छा तो जीवात्मा का स्वाभाविक गुण है। गुण गुणी से अलग नहीं हो सकता। बगैर इच्छा तो योगी भी योग नहीं करता। उसकी भी प्रबल इच्छा है कि मैं जन्म- मरण के बन्धन से छूट कर मुक्ति प्राप्त करूँ। ये इच्छा मोक्ष प्राप्त करने तक बनी रहती है। योगी मुक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करता है क्योंकि प्रयत्न भी जीवात्मा का स्वाभाविक गुण है। योग साधन, से लेकर, मुक्ति प्राप्त करने तक योगी भी हजारों, लाखों जीवात्माओं का कर्जदार हो जाता है। योगी को अन्न, फल, दूध, कपड़े रहने का स्थान आदि दैनिक उपयोग की वस्तुएं चाहिए। उन वस्तुओं के बनाने में लाखों जीवों के कर्म शामिल हैं। ये अलग बात है कि योगी योगक्रियाओं द्वारा भोगों को दग्धबीज कर देता है। परन्तु दूसरी सृष्टि में वही दग्धबीज भोग भोगने को योगी को जन्म-मृत्यु के बन्धन में आना पड़ेगा। इसलिये ये कहना कि हम अपने ही कर्मों का भोग भोगते हैं, ठीक नहीं है। अन्य जीवों के कर्मों के फल का भोग हम और हमारे कर्मों के फल का भोग अन्य जीव भी करते हैं। इसी आदान- प्रदान से सृष्टि चलती है।

स्वमन्तव्य

"सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः" परमपिता- परमात्मा जीवात्मा के अच्छे- बुरे कर्मों का फल जाति, आयु और भोग के रूप में देता है

१. जाति (योनि)- मनुष्य पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि।

२. आयु (समय) (काल)।

३. भोग- अच्छे- बुरे कर्मों का फल सुख-दुःख।

जाति (योनि) और भोग पर विद्वानों में मतभेद नहीं है। आयु पर मतभेद है। कुछ आयु को निश्चित कुछ घटना, बढ़ना मानते हैं। आयु (समय) के बारे में हम लेख के ऊपर बता चुके हैं कि समय दो प्रकार का होता है- एक मानुषी ज्ञानगम्य दूसरा ईश्वरी अनन्त जो जगत की उत्पत्ति, स्थिति और नाश का कारण है।

परमपिता- परमात्मा ने जीव को मनुष्य योनि दी भोग भोगने के लिए। समय के बगैर कोई भोग नहीं भोगा जा सकता। उसके लिए परमात्मा ने समय (आयु) दिया है।

विचारणीय विषय यह है कि जीव को जाति (योनि) भोग भोगने के लिए मिली है या जाति के लिए भोग मिले हैं (समय उभय पक्ष है)। उत्तर स्पष्ट है कि जीव ने कर्म किए, कर्म का फल भोग हुआ। उन भोगों को भोगने के लिए जाति (योनि) मिली अर्थात् भोग मुख्य और जाति गौंड़ है। क्योंकि कर्म नहीं, तो भोग नहीं और भोग नहीं, तो जाति (योनि) नहीं। अब प्रश्न होता है कि आयु भोग की हुई या जाति की। जब भोग के लिए जाति है, तो आयु भी भोग की ही हुई न कि जाति की। भोग भोगने को ही परमात्मा समय देता है। कितने भोग किस योनि (जाति) में भोगने हैं, परमात्मा निर्धारित करता है। मगर समय अनन्त है, उसकी कोई सीमा नहीं है। यह जीवात्मा के ऊपर निर्भर है कि वह भोगों को किस प्रकार भोगता है। मनुष्ययोनि पर ही विचार करते हैं। अच्छे- बुरे दोनों कर्म करने पर आयु बढ़ती है। यदि जीवात्मा योग- साधना, शुभ कर्म, आयुर्वेद के नियमों का पालन करते हुए संयमी जीवन जीता है, तो वर्तमान (मानुषी) आयु भी बढ़ती है तथा अच्छे कर्म करने से अच्छे भोग भी बढ़ते हैं। बढ़े हुए भोगों को भोगने के लिए परमात्मा आयु (समय) देता है इसलिए भोगों की आयु बढ़ गई। यही अच्छे कर्मों से आयु का

बढ़ना है। यदि जीव बुरे कर्म करता है, शराब, भांग, अन्डा, मांस अभक्ष्य पदार्थों का सेवना करता है/ बुरी संगत विषयों में फंसता है, तो वर्तमान (मानुषी) आयु घटती है, जल्दी मृत्यु को प्राप्त होता है। परन्तु बुरे कर्म करने से निम्न योनियों में जाने के भोग बढ़ जाते हैं, उन्हें भोगने को भी परमात्मा समय (आयु) देता है। अर्थात् बुरे कर्म करने पर भी आयु बढ़ती है। भोगों को भोगने में मानुषी काल गणना का महत्व नहीं है। वहाँ परमात्मा का अनन्त काल है, जो पूरे ब्रह्मांड में समान है। यदि मानुषी काल से आयु की गणना करेंगे, तो परमात्मा की सारी न्याय व्यवस्था चौपट हो जाएगी। क्योंकि समय भिन्न- भिन्न है। जीवात्मा भोगों को जल्दी भोगे, देर से भोगे कोई पाबन्दी नहीं है। जन्म-मृत्यु दुःख नहीं है, सृष्टि की स्वाभाविक क्रिया है। अपरस्मिन्न परं.... वैशेषिक दर्शन- ३/६

उदाहरणस्वरूप जीव को मुर्गे की जाति (योनि) में भोग भोगने हैं। परमात्मा उसे मुर्गे की योनि देगा। मगर अन्य जीवों के पापकर्म के कारण अन्डे में आते ही मनुष्य, कुत्ते, बिल्ली या अन्य जीवों द्वारा अन्डा खा लिया/ नष्ट कर दिया गया। दुबारा आया, तो चूजा खा लिया, तिबारा में १, २ माह का काट कर खा लिया। बार-बार आया, बार-बार नष्ट कर दिया गया। यहाँ पर भोग निश्चित है कि इतने भोग मुर्गे की योनि में भोगने हैं। समय (आयु) निश्चित नहीं है। कोई व्यवधान न आये, तो एक जन्म में भी भोग सकता है और यदि अन्य जीव मारते रहे, तो दस जन्म भी लग सकते हैं। यहाँ मुर्गे की योनि के भोग निश्चित हैं, जाति (योनि) की आयु निश्चित नहीं है। परमात्मा की न्यायव्यवस्थानुसार जीवात्मा बीच- बीच में अन्य योनियों में भी जा सकता है।

आयु भोग भोगने से ही घटती है :- अर्थात् जितने भोग भोगने में समय लगेगा, उतना समय (आयु) हमारे भोगों का घट गया। मेरा विद्वानों से नम्र निवेदन है कि परमात्मा के अनन्त काल को मानुषी काल से न जोड़ें। परमात्मा की व्यवस्था भारत के लिए नहीं है, सम्पूर्ण ब्रह्मांड के लिए है। जो नियम सारे संसार पर लागू हो, वही सही है। महर्षि पतंजलि ने तो सृष्टि निर्माण के ६ कारणों में से एक कारण विद्या-ज्ञान की व्याख्या की है। हम योगदर्शन के केवल एक सूत्र पर झगड़ रहे हैं। जो उचित नहीं है। हमारे पास वेदों के रूप में ज्ञान का अक्षण भंडार है।

नोट- मैं कोई सिद्धहस्त लेखक नहीं हूँ, मेरे लेख में बहुत सी गलतियाँ होंगी। विद्वानों से करबद्ध निवेदन है कि क्षमा करते हुए अपने विचारों से अवगत करायें।

❑❑

पृष्ठ १८ का शेष

who has not forgotton His divinity, that Christ can help us, in Him there is no imperfection.

Book II, Page 36

अर्थ- ईसामसीह जो ईश्वर का अवतार है, जिसने अपना देवतापन नहीं भुलाया है, वह ईसामसीह हमारी सहायता कर सकता है, उसमें कोई कमी नहीं है।

मूर्तिपूजा-

God is eternal, without and form, omnipresent. To thing of Hima s possessing any form is blasphemy.

Book II, Page 138

अर्थ- परमात्मा सदा से है और सदा रहने वाला है, उसकी कोई शकल सूरत नहीं है, वह सर्वत्र व्यापक है। यह सोचना कि उसकी कोई शकल- सूरत है, परमात्मा का अपमान करना है।

पश्चिमी देशों से सहायता-

It has ever been my conviction that we shall not be able to rise unless the Western Countries come to our help.

Book I, Page 285

अर्थ- मैं हमेशा से ऐसा मानता रहा हूँ कि यदि पश्चिमी देश हमारी सहायता करने के लिए नहीं आते, हम उन्नति नहीं कर सकेंगे।

❑❑

पृष्ठ २ का शेष

मछली-कछुआ जलचरों की हैं। इसी प्रकार अन्य भी हैं। परमेश्वर की मूर्ति कोई भी नहीं है। अगर हैं, तो बताइये कौन-सी हैं?

अब मैं परमेश्वर अमूर्त अर्थात् निराकार है इस विषय में प्रमाण देता हूँ, सुनिये, और खण्डन कर सकते हो, तो करिये?

१. स पर्यगाच्छुक्रमकायम् .... यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ८,

इस मन्त्र में परमेश्वर को, ''अकायम्'' अर्थात् शरीर रहित बतलाया गया है। जिसका श्रीर ही नहीं, उसकी मूर्ति कैसी?

२. सर्वे निमेषा जज्ञिरे, विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्वं न तिर्य्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्।।२

यजुर्वेद अध्याय ३२ मन्त्र २,

इस मन्त्र में बताया गया है कि - परमेश्वर को ऊपर नीचे, टेढ़ा, तिरछा, मध्य में कहीं से भी नहीं पकड़ा जा सकता, इसका सीधा अर्थ यह है कि - उसका कोई आकार नहीं है। अतः उसकी कोई भी मूर्ति नहीं है।

३. हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे, भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।।

यजुर्वेद अध्याय २५ मन्त्र १०,

इस मन्त्र में परमेश्वर को हिरण्यगर्भ कहा है और भूमि आदि सबका आधार बताया है। आपकी मूर्तियों को तो दूसरे आधारों की आवश्यकता पड़ती है। सर्वाधार की कोई मूर्ति नहीं है। अगर है, तो बताइये।

४. तदेजति तन्नैजति, तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य, तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।

यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र ५,

इस मन्त्र में परमेश्वर को सबका चलाने वाला ''**भ्रामयन् सर्व भूतानि**'' गीता में कहा है, सब भूतों को चलानेवाला और मन्त्र में उसको सबका चलाने वाला बताकर कहा है - **''तत् न एजति''** वह स्वयं नहीं चलता है। वह दूर से दूर है। और निकट से निकट है। वह सब जगत के भीतर है। और सबके बाहर है, अर्थात् सर्वव्यापक है। सर्वव्यापक वही हो सकता है, जो निराकार (अमूर्त) हो, उसकी मूर्ति नहीं।

५. गीता में इस मन्त्र से सर्वथा मिलता हुआ श्लोक है।

बहिरन्तश्च भूतानां, अचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वाद् अविज्ञेयम्, दूरस्थं चान्ति के च तत्।।१५।।

श्रीमद् भगवद्गीता अध्याय १३ श्लोक १५,

इस श्लोक का वही अर्थ है, जो अभी बोले गये वेदमन्त्र का है।

अर्थात् - वह परमेश्वर सबके बाहर भी है, और भीतर भी है, वह चर-चलाने वाला भी है, और अचर, न चलने वाला भी, वह दूर भी है, तथा निकट भी है। इतना इस श्लोक में विशेष कहा गया है कि परमेश्वर सूक्ष्म है, इस प्रकार बहुत से प्रमाण हैं, जिनसे सिद्ध है कि ईश्वर निराकार है, अमूर्त है, न उसकी मूर्ति है और न हो सकती है।

पं० श्री कृष्ण जी शास्त्री

सज्जनो !

श्री ठाकुर जी महाराज ने जो प्रश्न किये हैं, मैं उन सबके उत्तर देता हूँ। आज आपको पता लगेगा कि मूर्तिपूजा वेदों में भरी पड़ी है। श्री ठाकुर जी ने वेदों के प्रमाण माँगे हैं, मैं हर प्रश्न के उत्तर में वेदों के प्रमाण दूँगा, सुनिये -

१. रूपं-रूपं प्रति रूपो वभूव, तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय।

इस मन्त्र में साफ कहा है कि परमात्मा के सैकड़ों

रूप हैं, वह बहुत प्रकार के रूप बनाता है, उसकी बहुत प्रकार की मूर्तियाँ हैं, वेद से बता दिया कि उस परमात्मा की मूर्ति बनाओ। अब मूर्तियों को पूजने की आज्ञा वेदमन्त्र द्वारा बताता हूँ -

२. अर्चत प्रार्चत प्रिय मेधासो अर्चत।।

इस मन्त्र में साफ कहा है कि उसकी मूर्ति को पूजो।

३. बाल्मीकीय रामाण में लिखा है कि माता कौशिल्या उस समय मूर्तिपूजा कर रही थीं, जिस समय भगवान राम उनसे बन जाने की आज्ञा लेने को गये थे। मूर्ति काहे की बनानी चाहिये और कितनी बड़ी होनी चाहिए, इस पर यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के शतपथ का प्रमाण सुनिये, शतपथ के बिना तो यजुर्वेद का अर्थ हो नहीं सकता है, उसका प्रमाण कान खोलकर सुनिये।

शतपथ में महावीर की मूर्ति मिट्टी की बनानी लिखी है और उसका मुख तीन अंगुल का बनाने की आज्ञा है।

उसको पढ़िये और कुछ शर्म करिये।

नोट- ''शर्म करिये'' इस वाक्य पर सनातन धर्म के प्रधान जी ने पंडित जी को ऐसा कहने से रोका।

''अकायम्'' का अर्थ यह है कि भगवान का शरीर हमारे शरीर जैसा नहीं होता है। जो शरीर कर्म के फल से प्राप्त होता है, उसका नाम काया होता है। परमेश्वर का शरीर कर्मफल के बिना होता है। इसलिए उसको **अकायम्** कहा है।

भगवान ने स्वयं गीता में कहा है कि-

''जन्म-कर्म मे च मे दिव्यम्''

मेरे जन्म और कर्म दिव्य हैं। मेरा शरीर कर्म-फल से नहीं होता है।

ठाकुर जी महाराज!

वेदमन्त्र में **अकायम्** के साथ **अव्रण** भी कहा है। अर्थात् भगवान के शरीर में छिद्र और जख्म नहीं हो सकता, ऐसा उसका शरीर होता है।

श्री ठाकुर अमर सिंह जी शास्त्रार्थ केसरी-

श्री शास्त्री जी ने मेरे कुछ प्रश्नों का उत्तर देने का यत्न किया है, पर पूरा उत्तर नहीं हुआ, और न कभी होगा **१. ''रूपं रूपं''.....** ऋग. ६/४७/१७, इस मन्त्र में आपने ईश्वर की मूर्ति बनाने की, आज्ञा बताई है। इस मन्त्र में एक भी शब्द ऐसा नहीं है, जिसका यह अर्थ हो- ''परमेश्वर की मूर्ति बनाओ'' यदि ऐसे शब्द हैं, तो अबकी बारी में अवश्य ही बताना।

आपने यह जाना कि -इन्द्र बहुत रूपों में आता है। तो यहाँ इन्द्र के दो अर्थ हैं। एक जीवात्मा दूसरा सूर्य। जीव-पुरुष स्त्री पशु पक्षी कृमि, कीट पतंग आदि के शरीरों में उसी के नाम से पुकारा जाता है। यथा -

''त्वं स्त्री त्वं पुमान्'' अर्थर्ववेद १०/८/२७

तू स्त्री बनता है, तू पुरुष बनता है आदि-आदि।

उपनिषद् में भी देखिये -

नैव स्त्री न पुमानेषः न चैवायं नपुंसकः।
यद्यत शरीरमाधत्ते, तेन-तेन स युज्यते।।१०।।

श्वेताश्वेतर उपनिषद् अध्याय ५ वाक्य १०,

न यह जीव स्त्री है, न पुरुष है और न यह नपुंसक है। जिस-जिस शरीर को यह धारण करता है, उस-उस से युक्त होता है। जीव स्त्री के शरीर में स्त्री, पुरुष के शरीर में पुरुष और नपुंसक के शरीर में नपुंसक कहा जाता है। गीता में कहा है -

विद्या विनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चंव श्वपाके च, पण्डिताः समूदर्शिनः।।१८।।

गीता अध्याय ५ श्लोक १८,

ब्राह्मण, गौ, हाथी, कुत्ता, चाण्डाल आदि में पण्डित लोग समान (बराबर) आत्मा देखते हैं। (बाह्य) रूप भिन्न- भिन्न बहुत होते हैं। सूर्य भी प्रातः मध्यान्ह और सायंकाल को भिन्न-भिन्न रूपों में दिखाई देता है।

क्रमशः

आर./आर. नं० १६३३०/६७		रजिस्टर्ड नं० DL (DG -11)/8029/2015-17
Post in Delhi R.M.S	दिसम्बर 2017	लाईसेन्स नं० यू (डी०एन०) १४४/२०१५-१७
०५-११/१२/२०१७		Licenced to post without prepayment
भार- ४० ग्राम		Licence No. U (DN) 144/2015-17

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रों में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।

२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएं, यदि अंक न पहुँचा हो।

३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।

४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।

५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

दिनेश कुमार शास्त्री

कार्यालय व्यवस्थापक

मो०-९६५०५२२७७८

ओ३म्

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष व तार्किक समीक्षा के लिए उत्तम कागज़, मनमोहक जिल्द, सुन्दर आकर्षक छपाई एवं (द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ

सत्यार्थ प्रकाश

सत्य के प्रचारार्थ

● प्रचार संस्करण (अजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 50 रु.	प्रचारार्थ 30 रु.	प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं
● विशेष संस्करण (सजिल्द) 23×36÷16	मुद्रित मूल्य 80 रु.	प्रचारार्थ 50 रु.	
● स्थूलाक्षर सजिल्द 20×30÷8	मुद्रित मूल्य 150 रु.		प्रत्येक प्रति पर 20% कमीशन

10 या 10 से अधिक प्रतियाँ लेने पर विशेष अतिरिक्त कमीशन

कृपया, एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट

427, मन्दिर वाली गली, खारी बावली, दिल्ली-6

Ph. :011-43781191, 09650622778

E-mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....................

ग्राम.....................

डा0 ....

जिला.....................

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।